ऋषि युग्म की झलक-झाँकी

भाग-1

प्रकाशक

श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट (TMD)

श्रीरामपुरम्, गायत्री नगर-शांतिकुंज, हरिद्वार

(उत्तराखण्ड) पिन- 249411

प्रथम संस्करण 2011 **मूल्य- 66/-**

ऋषि युग्म की झलक-झाँकी

प्रकाशक :-
श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट (TMD)
श्रीरामपुरम्, गायत्रीनगर-शान्तिकुञ्ज-हरिद्वार
(उत्तराखण्ड) 249411

प्रथम संस्करण - 2011

प्रतियाँ -10,000

मूल्य - 65/-

सम्पर्क सूत्र :-

गायत्रीतीर्थ- शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड) भारत
फोन-(01334) 260602, 260309, 260328 फैक्स-260866
Internet:www.awgp.org Email:shantikunj@awgp.org

हमारे आत्मीय स्वजनो!

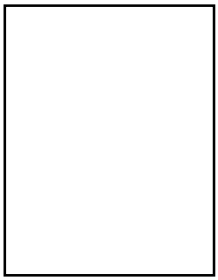

परम पूज्य गुरुदेव-वन्दनीया माताजी अपने परिजनों को प्रेम-आत्मीयता के साथ दिव्य पोषण देते रहे हैं। सबके व्यक्तित्व में उत्कृष्टता, भावनाओं एवं विचारों में श्रेष्ठता के दिव्य तत्त्व भरते रहे हैं। सबके दुःखों-कष्टों में वे हमेशा साथ रहकर धीरज एवं हिम्मत बढ़ाते रहे हैं। अब वे सभी परिजन अपनी अनुभूतियों को, अपनी गुरुसत्ता के दिव्य अनुदानों को अभिव्यक्त कर रहे हैं। इस जन्म शताब्दी की विशिष्ट वेला में वे किसी भी प्रकार उनके अनुदानों का ऋण उतारने की बड़ी कसक लिये हुए हैं।

आप सबकी श्रद्धा-भावना, समर्पण-साधना और अधिक बढ़े, इसी भाव से उनके दिव्य संस्मरणों को "ऋषि युग्म की झलक झाँकी" नाम की इस पुस्तक में आप सबके सम्मुख लाया जा रहा है। निश्चित ही यह पुस्तक संग्रहणीय होगी। यह हर कठिन अवसर पर प्रेरणा-प्रकाश देने वाली एवं जीवन जीने की कला समझने में बहुत उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा हमारा सुनिश्चित विश्वास है।

हमारे विराट् गायत्री परिवार के परिजनों के अनेकानेक ऐसे संस्मरण केवल उनके चित्त की स्मृतियों में ही भरे पड़े हैं, आशा है हमारे नैष्ठिक परिजन अपने सम्पर्क के पुराने कार्यकर्ताओं से ऐसे संस्मरण कलमबद्ध करवायें, या ऑडियो-वीडियो सीडी बनाकर यहाँ भेजते रहें, ताकि आगे भी इसी पुस्तक के अन्य अनेकों खण्ड प्रकाशित होते रह सकें। पूज्यवर के दिव्य, आकर्षक, चुम्बकीय व्यक्तित्व के अन्य अनेकों प्रसंग इसी प्रकार उल्लिखित किये जाने में वे अपना सहयोग प्रदान करेंगे, ऐसी हमारी आकांक्षा है।

आप सबके सर्वांगीण उत्कर्ष की स्नेहपूर्ण शुभकामनाएँ ।

आपकी बहिन

(शैलबाला पण्ड्या)

अनुक्रमणिका

भूमिका ---------- 5

1. ममता की मूर्ति, प्यार के सागर ---------- 7

2. यह तो गूँगे का गुड़ है ---------- 28

3. गुरुसत्ता के साथ मनोविनोद के क्षण ----------121

4. हम पाँच शरीरों से काम कर रहे हैं ---------- 133

5. साक्षात् शिव स्वरूप---------- 158

6. वे तंत्र के भी मर्मज्ञ थे---------- 178

7. भविष्य द्रष्टा हमारे गुरुदेव---------- 184

8. बच्चो! हमारा जन्म-जन्मांतरों का साथ है -------- 198

9. लाखों का जीवन बदला ---------- 212

10. बेटा! हम सदा तुम्हारे साथ रहेंगे ----------219

11. जिसने जो माँगा, वो पाया ---------- 228

12. भागीदारी की, नफे में रहे ---------- 247

13. उनकी चेतना आज भी सक्रिय है ---------- 251

भूमिका

यदा-यदा हि धर्मस्य.... की प्रतिज्ञा निभाने वाले परम स्रष्टा जब धरती पर अवतरित होते हैं, तब स्वयं को इतना गुप्त रखते हैं कि उनके सान्निध्य में निरन्तर कार्यरत व्यक्ति भी उन्हें ठीक से नहीं जान पाते। कभी झलक भी मिलती है, तब उन्हें एकटक देखते हुए यह सोचते हैं कि क्या ये सचमुच ईश्वर रूप हैं ? उनके इस प्रकार सोचते ही मायापति अपनी माया से उन्हें आच्छादित कर देते हैं व फिर अति सामान्य की तरह सब के साथ वही सामान्य जीवन क्रम चलता रहता है। उन्हें भान ही नहीं हो पाता कि वे उस परमसत्ता के साथ, उनके अंग-अवयव बन कर जीवन जी रहे हैं।

यही तो है लीलापति की लीला। ''सोई जानइ जेहि देहु जनाई'' की उक्ति पूर्णत: तब चरितार्थ होती है जब उनकी असीम अनुकम्पा से कोई-कोई भक्त उन्हें जान पाता है। जानने के बाद भी उनकी आकांक्षा के अनुरूप साथ चलने की सामर्थ्य जुटाने हेतु भी उनकी कृपा की आवश्यकता होती है। तभी तो अर्जुन जैसे समर्पित अभिन्न कृष्ण सखा को भी कहना पड़ गया कि ''कार्पण्य दोषोपहृत स्वभाव:...। कायरता के दोष से मेरा स्वभाव आहत हो गया है। धर्म के विषय में मैं मोहित चित्त हो गया हूँ, अत: मैं आपसे पूछता हूँ जिस कार्य से मेरा निश्चित भला हो, वही मार्ग बताइये।'' तब हम सामान्य जनों की क्या बिसात कि उनकी कृपा के बिना उन्हें पहचान सकें, उनकी राह चल सकें।

प्रस्तुत पुस्तक में ऐसे ही स्वजनों के गुरुसत्ता के साथ जुड़े प्रसंगों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है, जिससे भावी पीढ़ी भी पिछली पीढ़ी के कार्यों को जाने व समझे। अपनी समस्याओं के निदान हेतु उससे मार्ग दर्शन प्राप्त कर सके व अपनी श्रद्धा और समर्पण को निरंतर बढ़ाती रह सके।

साथ ही पूज्यवर के साथी, सहचर, सहयोगी, कदम से कदम मिलाकर चलने वाले, हर आज्ञा पर खड़े रहने वाले, निर्देशों को आँख मूँद कर मानने वाले, स्वयं असीम कष्ट सहकर भी कार्य पूर्ण कर संतोष प्राप्त कर उछलने-कूदने वाले बन्धु भी अपनी अनुभूति को तरोताजा कर रोमांचित हो सकें।

कभी पूज्य गुरुदेव ने कहा था कि बेटा हमने इतने अनुदान बाँटे हैं कि

यदि उन सबका लेखा-जोखा रखा जाये तो 18 महापुराण भी कम पड़ जायेंगे। वे परिजन जिन्होंने निज नयनों से उन्हें प्रत्यक्ष में भले ही न देखा हो, किन्तु उनके विचारों पर, उनके आदर्शों पर मर मिटने को तैयार हो गये व उनकी योजना को पूरा करने हेतु अपना जीवन समर्पित कर दिया। जो अपने सांसारिक कार्यों से समय, साधन, श्रम बचा-बचा कर गुरुकार्यों में होम रहे हैं, मिशन के विस्तार में अपना सहयोग देकर तन-मन-धन से युग निर्माण के आकांक्षी हैं। वे सभी स्वजन-बन्धु प्रस्तुत पुस्तक से प्रेरणा, प्रकाश, मार्गदर्शन, उत्साह, उमंग एवं कार्य पथ पर बढ़ने का साहस प्राप्त कर सकेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है।

इन यादों में वह शक्ति है कि हर परिजन अपने कर्तृत्व के अनुसार यह अनुभव कर सकेगा कि हमारी समर्थ गुरुसत्ता ने जो असीम प्यार-दुलार, स्नेह-सम्मान, ममता, करुणा, कृपा, आशीर्वाद स्थूल रूप में अपने साथियों पर उड़ेला है, उसे अपने सूक्ष्म रूप में आज भी उड़ेल रहे हैं। हमारी श्रद्धा, निष्ठा जितनी सशक्त एवं सार्थक बनकर सक्रियता में परिवर्तित होगी, उतना ही हम उनकी कृपा के अधिकारी बन सकेंगे।

ऋषिसत्ता से जुड़े संस्मरणों को पहले भी प्रकाशित किया जाता रहा है। स्मारिकाओं में, प्रज्ञा अभियान पाक्षिक में, अखण्ड ज्योति पत्रिका में एवं वाङ्मय में भी कुछ विशिष्ट संस्मरण छपते रहे हैं। किन्तु जन्मशताब्दी की इस महत्त्वपूर्ण वेला में परिजनों के संस्मरणों को विशेष तौर पर इकट्ठा किया जा रहा है। आने वाले समय में एक शृंखलाबद्ध रूप से इस विषय पर भी पुस्तकें निकाली जायेंगी। यह पुस्तक उसका एक नमूना भर है। अतः जागृत परिजनों से अनुरोध है कि वे इस पुस्तक से प्रेरणा लेकर उन परिजनों के संस्मरणों को, जो पूज्य गुरुदेव के सहयोगी रहे हैं और बहुमूल्य यादें अपने अन्दर छिपाये बैठे हैं, लिखित रूप में अथवा आडियो-वीडियो रिकार्डिंग के रूप में, जैसे भी संभव हो सके, शान्तिकुञ्ज भेजें, ताकि हम इस शृंखला को आगे बढ़ा सकें।

-महिला मण्डल, शांतिकुंज

1. ममता की मूर्ति प्यार के सागर

पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी प्यार-आत्मीयता, दया, करुणा, ममता की साक्षात् प्रतिमूर्ति थे। उन्होंने इस मिशन को स्नेह-वात्सल्य की नींव पर खड़ा किया है। प्रत्येक परिजन यही महसूस करता है कि उन्होंने मुझ पर इतना ममत्व लुटाया है कि सगे माँ-बाप भी क्या लुटाते होंगे। उन्होंने युग निर्माण योजना के इस संगठन को गायत्री परिवार के नाम से भी संबोधित किया है। भाव यह है कि हम सब एक ही परिवार के सदस्य हैं।

वसुधैव कुटुम्बकम के मर्म को उन्होंने अपने जीवन से समझाने का प्रयास किया है। वे कहते हैं, ''मैं अधूरा प्यार करना नहीं जानता। मैंने जिससे भी प्यार किया है, पूरा प्यार किया है।'' एक जगह पर वे लिखते हैं- '' कोई कहे कि तुम्हारे गुरु से बड़ा कोई ज्ञानी है तो मान लेना। यदि कोई कहे कि तुम्हारे गुरु से बड़ा कोई दूसरा तपस्वी और सिद्ध-समर्थ है तो भी मान लेना पर यदि कोई कहे कि तुम्हारे गुरु से ज्यादा प्यार करने वाला कोई है तो बेटा! कभी मत मानना। मेरा प्यार तुम लोगों के साथ हमेशा रहेगा। मेरे शरीर के रहने पर और शरीर के न रहने के बाद भी।'' वे कहते थे, ''मैंने अपने बच्चों से बहुत प्यार किया है।'' सन् 1971 के विदाई उद्‌बोधन में वे कहते हैं, ''...प्यार.. प्यार..प्यार। यही हमारा मंत्र है। आत्मीयता, ममता, स्नेह और श्रद्धा यही हमारी उपासना है।'' आज भी यह मिशन उनके इसी सूत्र के आधार पर आगे बढ़ रहा है।

फिर भी उनका स्थूल स्नेह जिन परिजनों ने पाया है, उसका आनंद तो वे ही जानते हैं। वास्तव में ऋषिसत्ता ने अपने बच्चों पर जो स्नेह लुटाया, वह अतुलनीय, अद्वितीय, असीम है। परिजनों को लिखे गये उनके पत्रों में ही इतनी आत्मीयता, इतना प्यार झलकता है कि उन्हें पढ़ते समय लगता है, जैसे वे सामने खड़े होकर हमें दुलार रहे हैं तो जब प्रत्यक्ष में मिलते होंगे तो कितना वात्सल्य, कितना ममत्व लुटाते होंगे, इसकी कोई सहज ही कल्पना कर सकता है। यहाँ हम परिजनों के कुछ संस्मरण व उन्हें लिखे पत्रों के कुछ छोटे-

छोटे अंश प्रकाशित कर रहे हैं, जिनसे उनके अनोखे स्नेह और वात्सल्य की झलक मिलती है।

गुरुजी-माताजी ने हम सबको अपना अंग-अवयव कहा ही नहीं अपितु अपने पत्रों में किस प्रकार व्यक्त किया है, जानें-समझें.....

वे संबोधन स्वरूप **'हमारे आत्मस्वरूप'** शब्द का प्रयोग करते थे। कितनी गहरी भावनाएँ छिपी हैं इस संबोधन में। एकत्व का भाव। पढ़ने वाले की क्या मनोदशा होती होगी ? मन कितना आह्लादित हो जाता होगा ? सहज ही कल्पना कर सकते हैं।

सन् 1971 में पूज्य गुरुदेव साधना हेतु हिमालय चले गये थे। उन दिनों में 30-10-1971 को अपने एक निकटस्थ परिजन को माताजी के द्वारा लिखे गये पत्र के अंश कुछ इस प्रकार हैं-

''....अत्यधिक व्यस्तता के कारण उत्तर जल्दी नहीं लिख पाई। पर ऐसा कोई दिन नहीं गया होगा, जिस दिन तुम दोनों को स्मरण न किया हो। तुम दोनों हमारी आँखों की पुतलियों की तरह हो। हमारा वात्सल्य तुम्हारे लिये हर घड़ी उमड़ता रहता है। तुम्हारी हर परिस्थिति का पूज्य आचार्य जी को पता है। ऐसा ही मानना चाहिये। भले ही शारीरिक दृष्टि से वे कितने ही सघन एकांत में क्यों न हों।.... ''

एक अन्य परिजन को माताजी 2-5-1971 को लिखे गए एक पत्र में लिखती हैं -

''.....आप हमें अपने सगे बच्चों की तरह याद आते रहते हैं। अपनी अंत:करण की भावनाएँ, अपना स्नेह किन शब्दों में व्यक्त करें ?..... ''

9-2-1971 को एक परिजन को वे लिखती हैं-

''..... आप बच्चों के अंतरंग जीवन में घुले-मिले रहने से कितनी प्रसन्नता होती है, इसे शब्दों में कैसे व्यक्त करें ? आप हमारे सगे बेटे की तरह हैं। यह संबंध अनेकों जन्मों की साधना द्वारा प्रगाढ़ किये हैं। आप अनेक जन्मांतरों तक हमारे स्नेह सूत्र में ऐसे ही बंधे रहेंगे। हमारा वात्सल्य वर्षा की तरह आप दोनों पर, बच्चों पर निरंतर बरसता रहेगा।..... ''

29-3-1970 के इस पत्र के शब्दों की गहराई नापी नहीं जा सकती...

''....आपको परमात्मा ने श्रद्धा की साक्षात् प्रतिमूर्ति बनाकर भेजा है। किसी भी माँ का अपनी नन्हीं संतान के लिये जिस तरह हृदय उमड़ता रहता है,

उसी तरह आपको सदैव अपने हृदय से लगाये रखने का मन बना रहता है। आप बच्चे हमें प्राणों से भी प्रिय लगते हैं।... ''

प्रस्तुत पत्र में पूज्य गुरुदेव का स्नेह और सतत संरक्षण का आश्वासन समझने योग्य है।

''हमारे आत्म स्वरूप,

आपका और बेटी श्रीपर्णा का पत्र मिला। होली का गुलाल भी। पत्र पढ़ते समय लगता है, आप दोनों सामने ही बैठे हैं। होली का हमारा आशीर्वाद और माताजी का स्नेह आप चारों को इस पत्र के साथ भेज रहे हैं।

हम लोग भविष्य में कहीं भी क्यों न रहें, आप लोगों को कभी अकेलापन अनुभव न होने देंगे। आप लोग अपने घर, आँगन, छत और कमरे में हमें बैठा, टहलता अनुभव करते रहेंगे।... ''

4-9-1970 को पूज्य गुरुदेव एक परिजन को लिखते हैं-

''हमारे आत्मस्वरूप,

आपका पत्र मिला। कई बार पढ़ा। आपकी भावनाएँ उमड़-उमड़ कर हम तक तो सदा ही पहुँचती रहती हैं। पर जब पत्र आता है तो उनमें ज्वार सा आ जाता है। पत्र लिखते समय लगता है, तुम लोग सामने ही बैठे हो।.... ''

17-8-1970 को पूज्य गुरुदेव एक बहन को लिखते हैं -

''... तुम हमारी बेटी की तरह हो। हमसे कुछ न कहो तो भी क्या पिता अपनी संतान के सुख की चिंता नहीं किया करते। तुम्हारे लिये जो भी आवश्यक होगा हम सदैव करते रहेंगे।... ''

28-8-1971 को माताजी एक बहन को पत्र में लिखती हैं-

''... कोख के बच्चे की साज-सँभाल किस तरह की जाती है वह एक माँ ही जानती है। अभी तक जिस तरह तुम्हारे हित का संरक्षण करते रहे हैं, आगे भी उसी तरह करते रहेंगे।... ''

ऐसे ही 20-5-1971 के इस पत्र में एक परिजन की श्रद्धा-निष्ठा को प्रोत्साहित करते हुए वे लिखती हैं-

''... आपकी श्रद्धा हमारा जीवन और प्राण है। यह निष्ठाएँ ही इस देश को नई सामर्थ्य प्रदान करेंगी।... ''

3-8-1971 के इस पत्र के शब्दों को देखें-

''.... तुम्हारी साधना निष्ठा का हृदय से सम्मान करती हूँ। आने वाली पीढ़ी के लिये यह संस्कार और निष्ठा वरदान बनेगी। उसके लिये कोटि-कोटि आत्मायें तुम्हारा उपकार मानेंगी।.... ''

वहीं इसी संबंध में 8-9-1970 में पूज्य गुरुदेव एक परिजन को लिखते हैं-

''...नव निर्माण की दिशाधारा को साकार बनाने में जिस श्रद्धा और तत्परता के साथ संलग्न हैं, उसे देखकर हमारा रोम-रोम पुलकित हो उठता है। आप जैसे कर्मठ स्वजनों के बलबूते पर ही हमने इतने रंगीन सपनों को साकार करने की आशा बाँधी है।... ''

14-10-1970 को एक अन्य परिजन को वे लिखते हैं-

''... पुण्य पर्व दशहरे पर भेजी तुम्हारी हार्दिक शुभकामनाएँ मिलीं। तुम्हारी यह श्रद्धा हमें कितनी शक्ति देती है, उसे हम शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकते। तुम दोनों तो हमारे प्राण हो। हम अंत:करण से सदैव ही तुम्हारे साथ जुड़े रहेंगे। इस पुण्य पर्व पर हम अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ और आशीर्वाद भेज रहे हैं।... ''

ऐसे असंख्यों पत्र हैं। प्यार-आत्मीयता एवं अपने कार्यों का श्रेय अपने शिष्यों को देने की कला तो कोई गुरुजी-माताजी से ही सीखे।

प्रत्यक्षत: अपने व्यवहार द्वारा स्नेह-आत्मीयता एवं वात्सल्य लुटाता उनका स्वरूप दर्शाते कुछ संस्मरण भी यहाँ प्रस्तुत हैं।

स्वयं रेत पर बैठ जाते

डॉ. अमल कुमार दत्ता, शान्तिकुञ्ज

गुरुजी माताजी का प्यार असाधारण, अलौकिक था। मैं उनसे क्या जुड़ा, उन्होंने मुझे जोड़ लिया। मेरा तो बस प्यार का अधिकार था। कुछ ऐसा सोच लें कि जैसे अचानक ही किसी लड़के या लड़की को प्यार हो जाता है। उनका अपनापन, प्यार भरी बातें, प्रेम से खिलाना इसी सबने मुझे जोड़ लिया। गुरुजी शाम को जब घूमने जाते तो मथुरा में यमुना किनारे हमें भी साथ ले जाते। वह रेत पर अपना तौलिया बिछाकर कहते थे, ''बैठो'' और स्वयं रेत पर बैठ जाते थे। उनका यह प्यार पागल बना देने वाला प्यार था। मैं उनके साहित्य और अखण्ड ज्योति का भक्त बन गया।

नयन-नयन से हृदय-हृदय से करुणा भरी विदाई

श्रीमती यशोदा शर्मा, शान्तिकुञ्ज

कन्या शिविर की विदाई के वह पल आज भी वैसे ही सजीव हैं। ''हम रो रहे थे। आँसू थम नहीं रहे थे। स्वाभाविक है कि रोते समय नाक भी बहने लगती है। परम पूज्य गुरुदेव समझाते भी जा रहे थे कि बेटा, फिर भी आते रहना और अपने हाथों से आँसू भी पोंछते जा रहे थे।

मेरी आँखों से आँसू बहकर गले तक जा रहे थे और नाक भी बह रही थी। गुरुदेव ने अपने हाथों से आँसू तो पोंछे ही साथ में मेरी नाक भी पोंछी। उनके हाथ में कोई रुमाल नहीं था फिर भी उन्हें नाक पोंछने में भी कोई संकोच नहीं हुआ। ऐसा प्यार, ऐसा दुलार भला कैसे भुलाया जा सकता है।''

माताजी शिविर समाप्त होने पर विदाई गीत गाया करती थी। ''नयन-नयन से हृदय-हृदय से करुणा भरी विदाई।'' उनके स्वरों में इतना दर्द भरा रहता था कि हम सब सुबक-सुबक कर रो देते थे। ऐसा लगता था जैसे-माँ के घर से विदा हो रहे हैं। उनके आँचल से बिछुड़ने का किसी का मन नहीं करता था। कोई ऐसा व्यक्ति नहीं होगा, जो शान्तिकुञ्ज से विदा होते समय रोया न हो। ऐसा अलौकिक प्यार था, गुरुजी-माताजी का।

मैं हूँ इसकी दादी

श्रीमती कृष्णा उपाध्याय, शान्तिकुञ्ज

मेरे दूसरे बेटे सुनील का जन्म मथुरा में हुआ। वन्दनीया माताजी मुझे लेकर अस्पताल गईं। वहाँ मेरे साथ ही थीं। बच्चे के जन्म के बाद, जब नर्स ''लेबर रूम'' से मुझे व बच्चे को बाहर लेकर आई, तब उसने आवाज लगाई- ''इसकी दादी कौन है ?'' माताजी ने झट से कहा, ''मैं हूँ इसकी दादी।'' नर्स बोली, ''लड़का हुआ है। खाली हाथ नहीं दूँगी।''

''कौन खाली हाथ माँग रहा है ? मैं तो खाली हाथ लूँगी भी नहीं।'' और माताजी ने सबको मन पसन्द न्यौछावर देकर बालक को गोद में ले लिया।

स्वयं जगत् जननी के हाथ से न्यौछावर पाकर पता नहीं, न्यौछावर पाने वालों ने अपने भाग्य को सराहा या नहीं। किन्तु मेरी आँखों में उस समय कृतज्ञता के आँसू थे। मैंने अपने व अपने बच्चे के भाग्य की सराहना की कि जाने किस पुण्य से यह शुभ घड़ी मिली जो मेरे बच्चे को स्वयं जगन्माता अपनी

गोद में खिला रही हैं। उसके बाद भी वे सुबह, शाम दोनों समय दूध लेकर स्वयं रिक्शे से अस्पताल आतीं। मुझे और बच्चे को दूध पिलाकर, हम दोनों को सँभालकर जातीं और बार-बार कहतीं-''छोरी! तू दूध पीने के लिये संकोच मत करना। जितना पियोगी उतना दूध बढ़ा दूँगी। बिलकुल भी परेशान मत होना।''

तपोभूमि आने के बाद भी घीयामंडी से दूध भेजतीं व प्रसूता को ही पिलाने का निर्देश देतीं। इस प्यार में कायल होकर ही बालक उनके अपने हुए। इतना बड़ा संगठन इसी प्यार के सहारे उन्होंने विनिर्मित किया।

आज भी सोचती हूँ तो लगता है, निश्चित ही हमारी कोई पूर्व जन्म की तपस्या होगी, जिससे हमें ऐसे माता-पिता मिले। उन्होंने बहुत-बहुत प्यार दिया।

जब भी उन पलों की याद आती है तो आँखें सजल हो जाती हैं।

यह मेरी बेटी नहीं, बेटा है

श्रीमती सावित्री गुप्ता, शान्तिकुञ्ज

अखण्ड ज्योति पत्रिका के माध्यम से हम लोग पूज्य गुरुदेव से जुड़े। यह पत्रिका हमारे यहाँ, हमारा धोबी लाकर देता था। लेख बहुत पसंद आये। पत्रिका में पता लिखा था, सो मथुरा पत्र डाल दिया। तत्काल जवाब आ गया। यह सिलसिला चलता रहा। हर हफ़्ते पूज्यवर के पत्र आ जाते, जवाब हम भी लिखते रहते।

एक बार पूज्यवर को नागपुर आना था। सो उन्होंने लिखा-''सावित्री! मैं नागपुर आ रहा हूँ, तू भी आ जाना। जिस बोगी में मालाएँ लटकी हों, उसी में चढ़ जाना। वहाँ हम मिल जायेंगे।''

चूँकि अभी तक पूज्यवर के दर्शन नहीं हुए थे, अतः असमंजस था। मेरी बेटी, बेबी तब नागपुर में पढ़ती थी। बेबी से भी मुलाकात हो जायेगी, सोचकर नरखेड़, घर से चली और माला वाली बोगी में चढ़ गई। चढ़ते ही पूज्यवर ने आगे बढ़कर कहा-''सावित्री! आ गई तू। धोबी तरुणकर कैसा है?'' सुनकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। हम कभी पहले मिले नहीं और नाम लेकर पुकार रहे हैं! साथ ही पत्रिका देने वाले का भी नाम मालूम है। उसके उपस्थित न होने पर भी उनका हाल जानना चाहते हैं..? कितने प्रश्न मन में उठे, और उनकी सहजता ने हृदय को छू लिया व जैसे, परिवार में पिता के साथ बातचीत में कुछ भान नहीं होता। उसी प्रकार प्रथम परिचय में ही बिना किसी बनावट के मैं उनके साथ घुल-मिल गई। उन्होंने अपने पास में बिठाया। पीठ

पर हाथ फेरा व कुशल क्षेम पूछी। इसी प्रकार बातचीत करते नागपुर पहुँच गये।

नागपुर में श्री शरद पारधी जी के यहाँ रुके। उनके पिता श्री मोरोपन्त पारधी-मराठी अखण्ड ज्योति पत्रिका के सम्पादक थे। इसलिये गुरुदेव जब भी नागपुर आते, उनके यहाँ अवश्य जाते। हम लोग भी गुरुदेव के साथ शरद जी के घर गये। वहाँ बहुत लोग थे। पूज्यवर के स्वागत के बाद सबका नाश्ता हुआ। उसके बाद गोष्ठी हुई। गोष्ठी में उन्होंने मुझे पास में बिठाया और सभी को सम्बोधित कर कहा-''यह मेरी बेटी नहीं, बेटा है। बहुत काम करेगी।'' वहाँ से गोष्ठी लेकर वे महासमुन्द के हजार कुण्डीय यज्ञ हेतु निकले। उन्होंने मुझे पूछा-''महासमुन्द चलेगी क्या?'' मैंने कहा-''गुरुदेव! मैं घर में कहकर नहीं आई हूँ, इसलिये नहीं जा सकती।''

पूज्यवर ने कहा, ''ठीक है, मथुरा आना।'' और महासमुन्द के लिये रवाना हो गये। जब मैं शान्तिकुञ्ज आ गई तब तो उनका प्यार, आशीर्वाद व संरक्षण पाकर हम निहाल ही हो गये।

मेरे लिये टिफिन जरूर भिजवाती थीं

श्री अशोक दाश , शान्तिकुञ्ज

माताजी प्यार लुटाने के भी अवसर खोजती रहती थीं। अक्सर ही कुछ न कुछ अपने हाथों से बना कर खिलातीं। कभी बाजरे की रोटी, कभी हलवा। एक दिन बोलीं ''लल्लू, आज मैं तुम लोगों को गरीबों का हलवा बनाकर खिलाती हूँ।'' उन्होंने बेसन का नमकीन हलवा बनाकर खिलाया। मुझे बहुत ही पसंद आया। घर आकर पत्नी को बताया। पत्नी ने चौके में रहने वाली बहनों से उसकी विधि पूछी, तो माताजी ने स्वयं उसे उसकी विधि बताई। इतना ही नहीं, जब भी माताजी की रसोई में वह बनता, वह मेरे लिये टिफिन जरूर भिजवाती थीं। उन्हें सबका ध्यान रहता था, किसको क्या पसंद है। जब जिसकी पसंद की जो चीज बनती, वह उसके लिये थोड़ा सा बचाकर जरूर रखती थीं।

मैंने तुझे नमकीन हलवा सिखाने के लिये बुलाया है

श्रीमती मणि दाश, शान्तिकुञ्ज

एक दिन दाश जी माताजी के पास नमकीन हलुआ खा कर आये और बोले कि बहुत स्वादिष्ट था। तुम उसे जरूर सीखना। मैंने चौके की एक बहन से

उसकी विधि पूछी। उसने मुझे बताया कि बेसन का घोल बना कर उसे बनाते हैं। उसने माताजी से भी कह दिया। एक दिन सुबह-सुबह साढ़े चार बजे माताजी का संदेश आया कि मुझे माताजी ने बुलाया है।

मैं बहुत घबराई कि इतनी सुबह माताजी ने क्यों बुलाया है? मुझसे कोई गलती हो गई है क्या? मैं डरते-डरते माताजी के पास पहुँची। माताजी हँसकर बोली, डरती क्यों है? मैंने तुझे नमकीन हलवा सिखाने के लिये बुलाया है। मैंने देखा, रसोई घर में गैस चूल्हे पर बड़ा सा भगोना रखा है। माताजी ने बेसन घोला और फिर उसे बनाने लगीं। मैं माताजी से बोली, माताजी मैं बनाती हूँ। माताजी बोलीं, ''ना लाली, तू नहीं कर पाएगी।'' थोड़ी देर में माताजी ने उस पर ढक्कन ढक दिया और बोलीं, ''अब इसे एक तरफ से ढक्कन हटाकर 45 मिनट चलाना है।'' मैं फिर बोली, ''लाईए माताजी, मैं करती हूँ।'' इस पर माताजी पुन: बोलीं, ''नहीं, तेरे हाथ में फफोले पड़ जायेंगे। मैं, माँ हूँ न बेटा! मुझे पता है। तू देख, मैं कैसे बनाती हूँ।'' मैंने घड़ी देखी माताजी लगातार 45 मिनट तक उसे चलाती रहीं।

मैं भाव विभोर हो कर माताजी को देखती रह गई। जब तक माताजी थीं, तब तक जब कभी भी वह हलवा बनता, माताजी टिफिन में भर कर दास जी के लिये जरूर भेजती थीं।

छककर कढ़ी खा

वे शान्तिकुञ्ज में रहने वाले हम लोगों पर ही नहीं अपितु शिविर में आये हुए भाई-बहनों पर भी ऐसा ही प्यार लुटाती थीं। एक बार एक शिविरार्थी भाई ने माताजी से कहा, ''माताजी आज मैं जा रहा हूँ। मैं एक महीने रहा पर इस बार कढ़ी खाने को नहीं मिली।'' माताजी ने कहा, ''अच्छा बेटा! बैठ।'' फिर उन्होंने चौके से एक बहन को बुलाया और उन सज्जन के लिये कढ़ी बनाने को कहा। वे सज्जन सकुचाये और मना करने लगे, पर माताजी ने उन्हें अपने सामने भोजन कराया। बोलीं, ''बेटा छककर कढ़ी खा।'' इतना ही नहीं रास्ते के लिये भोजन भी बाँध कर दिया।

लो बाजरे की टिक्की खाओ

उन दिनों शान्तिकुञ्ज में थोड़े से ही परिवार रहते थे। गुरुजी माताजी के पास आना-जाना, बातचीत करना भी सहज था। माताजी के पास तो कोई भी

कभी भी चला जाता था। एक दिन सावित्री जीजी ने माताजी से कहा, ''माताजी, बाजरे की टिक्की खाए बहुत दिन हो गए।'' माताजी ने तुरंत स्टोर वाले भाई से पुछवाया, ''बाजरा आ गया है क्या?'' वह बोला माताजी अभी नहीं आया है। माताजी ने उसे कहा ''जैसे ही आये मुझे बताना।'' अगले दिन, सुबह-सुबह 8:00 बजे ही माताजी ने बुलवा भेजा और बोलीं, ''लो बाजरे की टिक्की खाओ'' और साथ में दो-चार बाँध कर भी दे दीं।

शान्तिकुञ्ज की बहुत सी बहनें माताजी के साथ बिताये उन पलों को अक्सर याद करते हुए बताती हैं

प्रारंभ के दिनों में आस-पास का क्षेत्र विकसित नहीं था। छोटा-छोटा सामान लेने के लिये भी हरिद्वार जाना पड़ता था। माताजी सबके सामान की सूची तैयार करवा लेतीं और एक दो लोगों को भेजकर सबका सामान मँगवा लेतीं। फिर स्वयं ही सबको वितरित करतीं।

यूँ तो गुरुजी-माताजी के साथ बिताया हर क्षण त्यौहार जैसा ही था। पर त्यौहारों का तो अपना अलग ही मजा था। माताजी गीत गवातीं, ढोलक बजवातीं, सबको हँसाती भी रहतीं। त्यौहार के दिनों में माताजी के पास सबका भोजन होता था। माताजी कई प्रकार के पकवान बनाती थीं। हम सब शान्तिकुञ्ज की बहनें माताजी के पास पकवान बनवाने जाती थीं। माताजी एक तरफ बैठतीं और लोई (रोटी बेलने, कचौड़ी भरने हेतु आटे का गोला) बनाती जातीं। उनके काम में इतनी फुर्ती थी कि वे पूरे आटे के पेड़े बना देतीं और हम लोग सब मिलकर आधा भी नहीं बेल पाते थे। कभी-कभी वह कहतीं अच्छा, तुम सब मिलकर लोई काटो, मैं बेलती हूँ। हम लोग उसमें भी पिछड़ जाते थे। हम सब मिलकर लोई बनाते और माताजी सब बेलकर कहतीं, इतने लोग लोई बना रहे हो और मैं अकेली बेल रही हूँ, फिर भी पिछड़ जा रहे हो। इतना प्यार, माताजी ने दिया कि कभी लगा ही नहीं कि हम घर-बार छोड़कर परिवार से दूर रह रहे हैं।

हमारी बहू को मेंहदी तो लगा

श्री महेंद्र शर्मा जी व मुक्ति दीदी, शान्तिकुञ्ज

महेंद्र शर्मा जी ने बताया, ''मुझे हरी मिर्च व धनिया की चटनी बहुत पसंद थी। माताजी अक्सर मेरे लिये वह चटनी पिसवा कर रखती थीं।

एक दिन मैं माताजी के पास किसी काम से गया। माताजी के पास एक कटोरी में कुछ हरा-हरा सा रखा दिखाई दिया। मैंने सोचा चटनी रखी है। मैंने माताजी से पूछा, ''आज चटनी बनी है क्या?'' माताजी बोलीं, ''न लल्लू! मेंहंदी धरी है। आज करवाचौथ है, ले थोड़ी मेंहंदी मुक्ति के लिये भी ले जा, वो भी लगा लेगी।'' मैंने कहा, ''माताजी ये सब महिलाओं का काम है। मैं नहीं करता।'' फिर मज़ाक में कहा, ''मेरे यहाँ 21वीं सदी नहीं आयेगी माताजी, कि ये सब महिलाओं के काम करता फिरूँ, मैं?.. और... मेंहंदी ले जाकर दूँगा?'' कहकर मैं मेंहंदी लिये बिना ही नीचे आ गया।''

मुक्ती दीदी- ''कुछ समय बाद मैं किसी काम से गुरुजी के पास गई। उन दिनों शान्तिकुञ्ज में थोड़े से ही लोग थे और काम खूब रहता था। हम लोग दिन भर काम में व्यस्त रहते थे। गुरुजी ने मुझसे पूछा, ''मुक्ति तूने मेंहंदी नहीं लगाई।'' मैंने कहा, ''गुरुजी समय नहीं मिला, अभी लगा लूँगी।'' गुरुजी बोले, ''महेंद्र को बता देना, उसकी भी 21वीं सदी आयेगी और जरूर आयेगी। बेटा, तेरे घर में भी 21वीं सदी आयेगी।''

मैंने सोचा पता नहीं, गुरुजी क्या कह रहे हैं। मैं माताजी के पास गई तो माताजी ने कहा, ''मुझे पता है, तैने मेंहंदी नहीं लगाई होगी। महेंद्र को ले जाने को बोला तो वो यहीं छोड़ गया।'' फिर निर्मला भाभी (माताजी की बहू) को बोलीं, ''निर्मला, हमारी बहू को मेंहदी तो लगा।'' मैंने कहा, ''माताजी अब समय ही कहाँ है? पूजा होने वाली है और मुझे पूजा का सामान भी लाना है।'' माताजी बोलीं, ''अरे, पूजा में अभी आधा घण्टा है। तू मेंहंदी लगा फिर या ई संग बैठ के पूजा भी कर लेना।'' माताजी ने नई चूड़ियाँ मँगवाईं, अपने हाथ से पहनाईं और पूजा आदि करने के बाद ही मैं वापिस आई।

कमरे में लौट कर जब मैंने गुरुजी की बात बताई तो इन्होंने माताजी के साथ हुई बातचीत बताई। हम दोनों हैरान थे कि गुरुजी को सब बात कैसे पता हो जाती है? वास्तव में वे दोनों एक ही थे। कोई नीचे माताजी से बात करता, ऊपर गुरुजी को स्वत: ही वह बात पता हो जाती। कभी गुरुजी से कोई बात करता तो माताजी को नीचे सब पता हो जाती थी।

हम लोग अक्सर गुरुजी की डाँट भी सुनते थे। डाँट सुनकर नीचे उतरते तो माताजी पहले ही आवाज लगा कर बुला लेतीं और प्यार-दुलार

लुटाकर मन हल्का कर देतीं। हम लोग सोचते ही रह जाते कि माताजी को कैसे पता चल गया कि गुरुजी ने हमें डाँट लगाई है, पर वो तो जगत्जननी थीं। सबके दिल का हाल-चाल उन्हें पता रहता था। उनका प्यार पाते ही हम लोगों को जैसे पंख लग जाते थे और हम गुरुजी की डाँट भूलकर दुगुने उत्साह से काम में लग जाते। ऐसा हम सभी कार्यकर्ता महसूस करते रहे हैं।

जब गुरुजी ने बारिश में खड़े होकर दीक्षा दी

श्रीमती मिथिला रावत बताती हैं कि यह शक्तिपीठों की प्राणप्रतिष्ठा के समय की बात है। 26 जनवरी 1982 को छतरपुर में गुरुदेव का कार्यक्रम चल रहा था। अगला कार्यक्रम वल्लभगढ़ में था। हम गुरुदेव को लेने छतरपुर पहुँचे। गुरुदेव को सुबह 8:00 बजे छतरपुर पहुँचना था। गाड़ी लेट थी सो गुरुदेव 2:00 बजे पहुँचे। लोगों का उत्साह देखते ही बनता था। उस दिन खूब बारिश हो रही थी। फिर भी स्टेशन से शक्तिपीठ तक जगह-जगह लोग गुरुदेव के स्वागत के लिये छाते लिये, भीगते हुए खड़े थे। सबसे मिलते-मिलाते गुरुदेव 7:00 बजे शक्तिपीठ पहुँच पाये। पंडाल में जनता दीक्षा लेने के लिये बैठी थी। देर हो जाने व तेज बारिश के चलते आयोजकों ने कार्यक्रम में परिवर्तन करना चाहा तो लोगों ने कहा कि हम गुरुजी के दर्शनों के लिये बैठे हैं, हमें तो दीक्षा भी लेनी है।

गुरुजी तक संदेश पहुँचा तो गुरुजी बोले, ''अच्छा बेटा! यदि हमारे बेटे इस बारिश में भी हमें सुनना चाहते हैं और दीक्षा लेना चाहते हैं तो हम तैयार हैं। गुरुदेव के लिये मंच पर कुर्सी रखी गई। आधा घण्टा गुरुजी ने प्रवचन दिया। सबको दर्शन दिया। छतरी के नीचे खड़े-खड़े ही उन्होंने दीक्षा दी। वे थके हुए भी थे, चाहते तो मना भी कर सकते थे। पर भक्तों की इच्छा का मान रखने वाले भक्त वत्सल, वे भला कैसे मना कर सकते थे?

कार्यक्रम के पश्चात् जैसे ही मैं गुरुदेव से मिलने पहुँची, गुरुदेव हमें देखते ही बोले बेटा! तू क्यों चली आई? क्या मैं बच्चा हूँ, जो तू लेने चली आई? अगले दिन 27 तारीख को हम लोग वल्लभगढ़ के लिये रवाना हुए। गुरुजी ने मुझे भी अपने साथ ही बिठा लिया। बोले, ''चल! बैठ, बैठ, बैठ। रास्ते भर कितनी बातें करते गये। मैं थोड़ा संकोच से बैठी थी। बोले बेटा! ठीक से बैठ जा। थोड़ी-थोड़ी देर में ध्यान भी देते रहते कि मैं ठीक से तो बैठी हूँ। रास्ते में एक जगह लघुशंका के लिये गाड़ी रुकवाई। मुझसे बोले, ''बेटा! तू भी

चली जा।'' फिर इधर-उधर नजर दौड़ाई और बोले, ''जा! उधर झाड़ी में चली जा।'' गिलास में पानी लिये खड़े रहे। मैं लौटी तो बोले, ''ले! पानी ले ले।'' स्वयं पानी दिया। इतनी आत्मीयता, इतना प्यार, इतनी व्यावहारिकता, कोई पिता भी क्या दे सकता है, जो गुरुजी ने दिया।

हम शान्तिकुञ्ज आये हुए थे। बड़ी बेटी का रिश्ता रावत जी जहाँ करना चाहते थे, वहाँ के लिये वह तैयार नहीं थी। जिसकी चार बेटियाँ हों, उनकी शादी के लिये पिता को चिंता होना तो स्वाभाविक ही है। रावत जी रात में हमें बहुत नाराज हुए। गुस्से में यह भी कह गये कि जा अपने बाप के पास जा। वहीं जाकर कर लेना इसकी शादी। हम रात भर खूब रोये। सुबह होते ही गुरुजी ने हम तीनों को बुलाया और रावत जी से बोले, तू इस पर नाराज क्यों होता है? ये मेरी बड़ी प्यारी बेटी है। इस पर नाराज मत हुआ कर।'' और बोले, ''जाओ।'' हम लोग लौट आये।

उसी दिन मुझे घर भी लौटना था। बाकी परिवार घर पर ही था। मैं अपना सामान उठा कर चलने ही वाली थी कि मन में आया, जाते-जाते गुरुजी से मिल लूँ। मैं दौड़ कर गुरुजी के पास चली गई। गुरुजी अपने कमरे में टहल रहे थे। मैंने प्रणाम किया और पता नहीं क्या हुआ, मैं जोर-जोर से रोने लगी। गुरुजी ने मुझे छोटे बच्चे की तरह अपने सीने से लगा लिया। मेरे आँसू पोंछे। प्यार से वे मुझे बेबी बुलाते थे। बोले, ''रो मत बेबी! मैं हूँ न तेरा बाप। मैं करूँगा तेरी बेटियों की शादी। जैसे तू कहेगी, जैसे ब्राह्मण से तू कहेगी, सर्विस वाला, बिजनेस वाला जैसा लड़का कहेगी वैसा ढूँढ़ दूँगा। तू चिंता मत कर। बेटा! मैं तेरा पिता हूँ।''

फिर बोले, ''अब बेटा तू आ जा। बार-बार कहता हूँ, तू सुनती नहीं।'' हम शान्तिकुञ्ज आ गये। गुरुजी कहते बेटा लड़कियों की शादी की जिम्मेदारी मेरी है। हमारी सब समस्याऐं उनकी हो गईं। खूब संघर्ष सहा, पर पग-पग पर उन्हें साथ खड़े पाया। इतना प्यार, इतना दुलार उन्होंने दिया कि हमारे पास बताने के लिये शब्द भी नहीं हैं।

क्यों सिकुड़ा बैठा है?

श्री लक्ष्मण अग्रवाल, बिलासपुर

शक्ति पीठों के उद्घाटन हेतु जब छत्तीसगढ़ में पूज्यवर का कार्यक्रम चल रहा था, तब मैंने सोचा, क्यों न गुरुदेव के सान्निध्य लाभ का सौभाग्य प्राप्त

किया जाय। घर-दुकान का काम बच्चों को समझाकर एक माह गुरुदेव के साथ रहूँगा। यह सोचकर कार-ड्राइवर व मैं भिलाई हेतु निकल पड़े, क्योंकि गुरुदेव वहाँ के उद्घाटन के बाद सड़क मार्ग से आने वाले थे।

भिलाई के कार्यक्रम के बाद गुरुदेव हमारी गाड़ी में बैठे। मैं अपने सौभाग्य को धन्य मान रहा था। वहाँ से रायपुर आये, इस बीच पूज्यवर ने मुझे अपने पास ही बैठाया। मुझे थोड़ा संकोच हो रहा था अत: मैं सिकुड़ा हुआ बैठा था।

गुरुदेव ने चुटकी ली-क्यों, सिकुड़ा हुआ बैठा है? मैं अछूत हूँ क्या? मुझसे कुछ भी जवाब देते नहीं बना। फिर मैं सहज होकर ठीक से बैठ गया। ऐसे थे गुरुदेव! छोटी-छोटी बात का भी ध्यान रखते थे।

बेटा जयंतिलाल! मैं यहाँ हूँ

श्री जयंतीलाल पटेल, राजनांदगांव

यह 1969 की बात है। उन दिनों मैं गुजरात में रहता था। एक बार अहमदाबाद में गुरुदेव का कार्यक्रम था। संयोग से मैं खरीदी करने गया हुआ था। स्टेशन पर मैंने परचा लगा देखा। सोचा रात को गुरुजी के पास मिलने चला जाऊँगा। रात में मुझे थोड़ी देरी हो गई। घर खोजते-खोजते रात के 12:30 बज गये थे। मणिनगर में, मैं घर खोज रहा था कि इतने में एक छत पर से आवाज आई, ''बेटा जयंतिलाल! मैं यहाँ हूँ। तू यहाँ आ जा।'' मैंने ऊपर देखा, छत पर गुरुजी खड़े थे। उन्होंने एक परिजन से कहा कि जाओ दरवाजा खोल दो और इन्हें ऊपर ले आओ। मुझे आश्चर्य हुआ कि गुरुजी को इतनी रात में भी पता चल गया कि मैं रास्ता ढूँढ़ रहा हूँ और वे छत पर से मुझे बुला रहे हैं। जैसे ही मैं ऊपर पहुँचा, गुरुजी बोले, ''आओ बेटा, मैं तुम्हारा ही इंतजार कर रहा था।''

रात्रि का एक बज रहा था, फिर भी गुरुजी ने मुझसे बातचीत की। फिर मुझे सोने के लिये भेज दिया। इतना स्नेह, इतनी आत्मीयता, बच्चों का ऐसा इंतज़ार। वहाँ कैसे न व्यक्ति सब कुछ न्यौछावर कर दे।

आओ बच्चो तुम्हें माताजी के दर्शन करा दूँ

श्री मदनलाल नामदेव, करही (खरगोन)

बात 1964 सितंबर की है। मैंने अपने दो साथियों श्री दीपचंद राठौर और अन्तरसिंह मंडलोई के साथ संकल्प किया -''मथुरा पहुँचकर पूज्य आचार्य जी से जब तक नहीं मिलेंगे, तब तक भोजन नहीं करेंगे।'' सो शाम 7 बजे के

लगभग मथुरा पहुँचते ही साइकिल रिक्शा किया। किन्तु प्राचार्यजी के आग्रह व निर्देश से द्वारकाधीश की आरती व दर्शन के मोह के कारण हम रात साढ़े आठ के लगभग तपोभूमि पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर बाहर से ही बताया गया कि वे घीयामण्डी चले गये हैं और साढ़े आठ बजे सो जाते हैं। अत: अब मिलना ही हो तो प्रात:काल आना। अब उनसे मिलना संभव नहीं है। परन्तु हमारा मन उनके दर्शनों को छटपटा रहा था। सो पूर्ण आत्मविश्वास से घीयामण्डी के लिए रिक्शा मोड़ लिया।

दरवाजा ठोका-आवाज लगाई। दरवाजा खुला और खोलने वाले के पीछे-पीछे उस भूतहा मकान की छत पर हम पहुँचे। हमारे इष्टदेव पूज्यवर पुरानी खाट पर, मात्र धोती पहने बैठे थे। जैसे ही आँखे मिली। हम नजदीक पहुँचे और अपनी पूजा के फूल, श्रीफल उनके श्रीचरणों में चढ़ाते, उसके पूर्व ही उन्होंने कहा कि मैं कब से तुम्हारी राह देख रहा हूँ। हम अपनी सुध-बुध भूल गये और उनका अपार प्रेम पाकर अनुग्रहीत हो गये। उन्होंने पकड़कर गले लगाया और जबरन अपने पास बिठा लिया। तीनों से अलग-अलग पारिवारिक प्रश्न पूछे-समाचार जाने। जिसने हमें चमत्कृत, विस्मृत और आह्लादित कर दिया। फिर वे श्रीकृष्ण-अर्जुन और सत्यनारायण कथा के गूढ़ार्थ कहते हुए धर्म की सामयिक परिभाषा समझाने लगे। लगभग बीस मिनट बाद उन्होंने कहा, ''आओ बच्चो तुम्हें माताजी के दर्शन करा दूँ।'' उन्होंने माताजी को आवाज लगाई- कहा, ''तुम्हारे बेटे आये हैं।''

एक साँवली सी साधारण पोशाक वाली महिला सामने थी। मुख मंडल पर आभा। हमें तब तक भी नहीं मालूम था कि वे कौन थीं और पूज्यवर का उनसे क्या रिश्ता है। फिर गुरुजी ने अखण्ड ज्योति और उनकी पूजा स्थली (आसन) दिखाई, और कहा कि बेटा, अब अपने प्राचार्यजी और साथियों को लेकर प्रात: तपोभूमि आना, हम वहाँ मिलेंगे। अब हमें उन फूलों व श्रीफल और भेंट का ध्यान आया, जो अब तक हमारे हाथों में थे। संकोच के मारे हमने वे वहीं, माताजी के चरणों में रख दिये। पूज्यवर को प्रणाम किया, विदा हुए। ऐसा उच्चस्तरीय असीम प्यार पाकर हमारे वे क्षण चिरस्मरणीय हो गये। उस आनन्द की अनुभूति आज भी हृदय में अंकित है।

मेरा हनुमान आ गया।

श्री श्रीकृष्ण अग्रवाल जी, शान्तिकुञ्ज

एक बार परम वंदनीया माताजी को रक्षा कवच हेतु चाँदी के ताबीज की आवश्यकता पड़ी। उन्होंने, सुबह 4.00 बजे मुझे फोन किया।

''बेटा, पचास हजार चाँदी के ताबीज लाना है। तू दिल्ली चला जा। वहाँ से ले आना।'' मैंने कहा, ''माताजी, सोनी जी से कह देता हूँ। वह दिल्ली जाते रहते हैं, ले आयेंगे।''

माताजी ने कहा–''नहीं बेटा, मुझे जल्दी जरूरत है। इसीलिये तुझे सुबह चार बजे कह रही हूँ। तू अभी चला जा। यदि प्रणाम करने का मन हो तो मैं किवाड़ खुलवाये देती हूँ। तू प्रणाम कर जा।''

मैंने कहा–''माताजी, अगर ऐसी बात है तो मैं अभी चला जाता हूँ। तैयार तो हो ही चुका हूँ। आप मुझे फोन पर ही आशीर्वाद दे दें, क्योंकि प्रणाम करने आपके पास आऊँगा तो दरवाजा खोलने आदि में समय लगेगा। तब तक मैं बहुत आगे निकल जाऊँगा।''

माताजी ने कहा–''मेरा आशीर्वाद है बेटा, तू जा।'' और मैं चला गया। पाँच बजे हरिद्वार से बस में बैठकर साढ़े दस बजे दिल्ली पहुँचा। घण्टे भर में खरीददारी हो गई। दोपहर 12:00 बजे बस में वापसी हेतु बैठा। शाम 5:00 बजे शान्तिकुञ्ज पहुँच गया। शाम को ही वन्दनीया माताजी को ताबीज देने पहुँचा।

माताजी जैसे मेरा इंतजार ही कर रही थीं। मुझे आते देख बोलीं, ''मेरा हनुमान आ गया।'' उनके इन प्यार भरे शब्दों को सुनते ही मेरी सारी थकान गायब हो गई। ऐसा लगा जैसे शक्ति संचार हो गया हो।

बाद में इन्हीं चाँदी के ताबीजों में रक्षा कवच भरकर व साथ में रुद्राक्ष रखकर परम वन्दनीया माताजी ने एक-एक प्रतीक अपने सभी गायत्री परिजनों को दिया था। यह अपने जाने के बाद भी उनकी रक्षा करने का आश्वासन था। जिसका लाभ गायत्री परिवार के परिजन आज भी उठा रहे हैं।

मैं, तेरी माँ हूँ

श्री प्रेम जी भाई काका जी, शान्तिकुञ्ज

सन् 83 में मैं हरिद्वार, कच्छी आश्रम आया था। वहाँ केवल मूँग पर एक माह का उपवास कर रहा था। ब्रह्मवर्चस् के श्री जेठा भाई पी. ठक्कर जी कच्छी आश्रम आते थे। एक दिन वे मुझे शान्तिकुञ्ज लाये। उन्होंने मुझे शान्तिकुञ्ज घुमाया व माताजी से भी मिलाया।

मैंने माताजी को प्रणाम किया तो उन्होंने पूछा–कोई तकलीफ है क्या? मैंने कहा–माताजी और तो कोई तकलीफ नहीं है, बस एक पीड़ा है, मेरी माँ जब मैं डेढ़ साल का था, तभी गुजर गई थी। सौतेली माँ ने बहुत सताया, अत: मैं माँ के प्यार से वंचित रहा। बस यही पीड़ा मुझे सताती है।

माताजी ने तुरन्त कहा–''बेटे! मैं, तेरी माँ हूँ। तू यहाँ का हो जा। मेरा काम कर। मन से चिन्ता छोड़ दे, मैं तुझे सँभाल लूँगी। तू हमेशा मुझसे मिलते रहना।''

उनकी वाणी में न जाने क्या जादू था, मुझे लगा, जैसे मेरी माँ मिल गई। अप्रैल, सन् 1985 में, मैं अपना सब कारोबार समेट कर हमेशा के लिये शान्तिकुञ्ज आ गया। माताजी का असीम प्यार पाया। यही मेरी अनमोल निधि है।

हमें हँसी आ गई

श्रीमती प्रेरणा वाजपेई, शान्तिकुञ्ज

अंतिम दिनों में माताजी का स्वास्थ बहुत खराब था। मैं, अंशू और जीजी (आद० शैल जीजी) बारी-बारी से हर समय उनकी सेवा में रहते थे। हम लोग उन्हें एक पल के लिये भी अकेला नहीं छोड़ते थे। उतने कष्ट में भी हमने देखा माताजी की ममता हर पल उमड़ती रहती थी। एक दिन अंशू मुझसे कहकर गई कि आज मैं थोड़ी देर से आऊँगी। तब तक तुम रुकना। मुझे देर तक रुका हुआ देखकर माताजी बोलीं, ''तू जा। खाना खा, तुझे भूख लगी होगी।'' मैंने कहा, ''खा लूँगी माताजी, अंशू अभी आती ही होगी।'' माताजी बोलीं, ''तू जा, क्यों चिंता करती है? मैं तो हूँ।'' जबकि माताजी स्वयं ही अत्यधिक बीमार थीं। उनकी बात सुनकर मैं और शैल जीजी जोर से हँस पड़े। पीड़ा के कारण माताजी हँस नहीं सकीं, पर वो भी मुस्कुरा दीं। किसी भी स्थिति में उनका अपना माँ का भान गया नहीं। वो जगदम्बा जो थीं।

बेटी! तू आ गई

डॉ. मंजू चोपदार, शान्तिकुञ्ज

एक दिन डाकिया एक पत्रिका लाया। जिसका नाम था ''अखण्ड ज्योति''। उसके साथ एक पत्र भी था जो घीयामण्डी, मथुरा से लिखा गया था। लिखा था, ''इस पत्रिका का उड़िया में अनुवाद करो।'' मुझे आश्चर्य हुआ। मैं वहाँ न तो किसी को जानती थी और न ही ऐसा कोई पत्र व्यवहार हुआ था, जिससे वह पत्रिका भेजते। फिर भी मैंने उत्सुकतावश उसे पढ़ा, अनुवाद किया व भेजा। उन्हें पसंद आया और क्रम चल पड़ा। इस तरह दो वर्ष अनुवाद करते व्यतीत हो गया।

दो साल तक गुरुदेव का साहित्य पढ़ने व अनुवाद करने पर, मेरा मन उनके प्रति श्रद्धा से भर गया। अत: उनसे मिलने, दर्शन करने की तीव्र इच्छा होने लगी। किन्तु उन दिनों हरिद्वार के लिये कोई सीधी गाड़ी नहीं थी, इसलिये कुछ दिन यूँ ही बीते।

एक दिन मैं अपने आप को रोक नहीं पाई। पाँच सौ रुपये रखे और घर में बिना किसी को बताये अकेले ही ट्रेन में बैठ गई। दूसरे दिन दिल्ली उतरी। कुली से पूछताछ कर रात को मसूरी एक्सप्रेस में बैठ गई। सबेरे हरिद्वार पहुँची। दिसम्बर माह की कड़कड़ाती ठंड और ऊपर से स्टेशन पर पहुँचते ही जम कर बारिश होने लगी। हरिद्वार में इतनी ठण्ड होगी, इसकी मुझे कल्पना भी नहीं थी। मैंने स्वेटर वगैरह भी नहीं रखा था, ठंड से काँप रही थी। तीन दिन से खाया-पिया भी नहीं था। चलने से पहले कुछ भी सोचा नहीं था। अब हरिद्वार पहुँचने के बाद सोचने लगी, अकेली आ तो गई, गुरुजी को कभी देखा भी नहीं है। पता नहीं वे मुझे पहचानेंगे कि नहीं। यदि नहीं पहचाना तो क्या होगा? आदि-आदि।

इसी प्रकार सोचते-सोचते, ताँगा पकड़ा व शान्तिकुञ्ज पहुँची। पूज्य गुरुदेव नीचे ही मिल गये। देखते ही उन्होंने कहा, ''बेटी! तू आ गई।''

न जाने मुझे क्या हुआ, मैं रोने लगी। उन्होंने मुझे बहुत प्यार किया, सिर पर हाथ रखा व कहा, ''अरे! तू तो ठंड से काँप रही है। जा, माँ से मिल ले।'' मैं जब ऊपर माताजी के पास पहुँची तो गुरुजी ने माताजी से कहा- ''छोरी को कपड़े दो, स्वेटर भी नहीं लाई।'' माताजी ने मुझे कपड़े दिये। स्वेटर

पहनाया व स्वयं पास बिठा कर खाना खिलाया। मुझे बहुत चैन मिला और मैं सो गई। बाद में उठकर घर पर फोन किया कि मैं हरिद्वार में हूँ, तब तक घर के लोग काफी परेशान थे।

फिर मेरा मन हुआ कि आई हूँ तो एक अनुष्ठान कर लूँ। मैंने अनुष्ठान किया। मेरे मन में बार-बार विचार आने लगा कि पूर्णाहुति पर गुरुजी माता जी को क्या दूँ? मेरे पास पैसे कम थे अत: मैंने पूर्णाहुति के दिन गुरुजी माताजी की आरती उतारी, पूजा की व अपनी चूड़ी, हार और अँगूठी उतार कर दे दी। माताजी ने सिर पर हाथ रखा, बहुत प्रसन्न हुईं व मुझे प्रसाद स्वरूप मिठाई व फल दिये। रास्ते का खाना एवं टिकिट की व्यवस्था भी की। इस प्रकार गुरुदेव-माताजी से मेरा प्रथम मिलन अविस्मरणीय बन गया।

तेरे घर क्या है ?

श्री अगाधू महापात्र, दन्तेवाड़ा (बस्तर)

घटना शक्तिपीठों की प्राण-प्रतिष्ठा के समय की है। दन्तेवाड़ा के प्रमुख कार्यकर्ता श्री अगाधु महापात्र जी ने उद्घाटन हेतु पत्र लिखा। तब जवाब मिला-''गुरुवर दौरे पर निकल चुके हैं। अब संभव नहीं है।'' क्षेत्रों से सम्पर्क करने पर भी वहाँ के व्यवस्थापकों ने मना कर दिया। अत: हताश होकर निर्माण कार्य शिथिल करा दिया और बुझे मन से बैठ गए।

अचानक एक दिन प्रात: आठ बजे एक कार्यकर्ता आया और कहा-''कल गुरुजी यहाँ उद्घाटन के लिये आ रहे हैं, तैयारी रखें।'' वे हर्ष विह्वल हो गए। गुरुदेव आये, उद्घाटन हुआ। वे बेचारे बहुत गरीब थे। अत: पूज्यवर व उनके सहयोगियों के भोजन का इंतजाम एक इंजीनियर साहब के घर किया गया। चाहते तो बहुत थे कि पूज्यवर को अपने घर भोजन कराते। पर केवल गुरुदेव को निमंत्रण कैसे दें? सबकी व्यवस्था कर पाना उनके लिये संभव नहीं था। पर महाकाल से कुछ छिपा रहता है भला।

पूज्यवर ने उद्घाटन के बाद कहा-''अगाधू, भोजन का क्या इंतजाम है?'' ''गुरुजी, इंजीनियर साहब के घर भोजन की व्यवस्था की गई है।'' अगाधू जी ने उत्तर दिया।

''अच्छा! तेरे घर क्या है?'' कहते हुए गुरुजी उनके घर की ओर बढ़ गए। वे चुप रह गए। कैसे कहें? इच्छा तो बहुत थी कि गुरुवर मेरे घर में

भोजन करते। पर इतनी बड़ी व्यवस्था नहीं कर सकता था, क्योंकि गुरुजी के साथ कई लोग थे।

घर में माँ ने प्रसाद स्वरूप थोड़ी सी खीर बनाई थी, शायद गुरुदेव आ जायें। सो उसी को गुरुदेव को रोटी के साथ कटोरी में दे दिया। गुरुदेव बड़े प्रेम से खीर की प्रशंसा करते हुए खाये जा रहे थे। सभी कार्यकर्ता खड़े थे, व अगाधु जी भाव-विभोर थे। लीलापति की लीला देख सभी धन्य हो रहे थे। ऐसा था, उनका स्नेह। कहीं तो सभी के खाये बिना खाते नहीं, और कहीं अकेले ही भक्त का मान बढ़ा रहे थे।

वह विलक्षण प्यार की अनुभूति थी

श्री जयराम मोटलानी, शान्तिकुञ्ज

उन्हें सबका ध्यान रहता था। मैं उन दिनों नया-नया ही शान्तिकुञ्ज आया था। 1989 का गुरु पूर्णिमा पर्व था। गुरुजी का प्रणाम चल रहा था। हम कुछ भाई भोजन परोसने में तल्लीन थे। प्रणाम का क्रम पूरा होने जा रहा है, इसका हमें पता नहीं चला। तभी एक भाई हमारे पास आए और बोले, ''चलो सब लोग, गुरुजी बुला रहे हैं, प्रणाम का क्रम समाप्त होने वाला है।''

हम लोग उन भाई के साथ चल दिये। उन्होंने बताया कि जैसे ही प्रणाम का क्रम पूरा होने वाला था। पूज्यवर ने कहा, ''देखना उधर कुछ बच्चे भोजन परोस रहे हैं। उन्होंने प्रणाम नहीं किया है। उन्हें बुला लाओ।'' ऐसे थे वे दूरद्रष्टा। उनकी निगाह सब पर रहती थी।

1989 में ही पूज्य गुरुदेव ने कार्यकर्ताओं से 11 वर्ष तक घर न जाने का संकल्प पत्र भरवाया था। मैं उस समय शान्तिकुञ्ज में नहीं था। अत: संकल्प पत्र नहीं भर पाया था पर मन ही मन संकल्प कर लिया था। सन् 1992 में मैं टोली में गया था। मेरी छोटी बहन की शादी थी। घर से मेरे लिये बार-बार पत्र आ रहा था। शान्तिकुञ्ज से भी मुझे लौट आने के लिये कहा गया पर मैंने मना कर दिया कि मैं शादी में नहीं जाऊँगा।

तब माताजी ने एक भाई को भेजा व मुझे लौट आने का संदेश भिजवाया। मैं जब माताजी के पास पहुँचा तो माताजी ने पूछा, ''लल्लू तेरी बहन की शादी है। जाता क्यों नहीं?'' मैंने कहा, ''माताजी मैंने 11 वर्ष तक घर न जाने का संकल्प लिया है।'' इस पर माताजी बोलीं, ''संकल्प किसे दिया था,

मुझे ही न। मैं ही कह रही हूँ कि जा।'' माताजी ने मुझे 1000 रुपये दिये और कहा, ''बेटा, बहन की शादी है न, यह बहन को देना।''

उनकी लीला ही न्यारी थी। कभी तो वे घर जाने के लिये मना करतीं और कभी टोली में से भी वापिस बुला कर भेज देती थीं। इसके पहले एक बार घर वालों का बहुत दबाव पड़ रहा था तो मैंने माताजी से घर जाने के लिये पूछा, तब वे बोली थीं, ''न बेटा न, घर जाओगे तो खेती-बाड़ी और काम धंधे में फँस जाओगे।'' फिर मेरे सिर पर हाथ रखा और इतना प्यार दिया, लगा कि उनसे अधिक प्यार करने वाला संसार में और कोई नहीं है। वह विलक्षण प्यार की अनुभूति थी।

वह सुअवसर मुझे फिर कभी नहीं मिला

श्रीमती रुक्मिणी माहेश्वरी, शान्तिकुञ्ज

सन् 1980 की बात है। किसी प्रकार का अभाव न होते हुए भी हमें मानसिक शान्ति नहीं थी।

तब मेरी बड़ी बहन श्रीमती सरला रानी ने गायत्री चालीसा दिया व मंत्र लेखन हेतु कहा। इससे प्रभावित होकर हम गुरुदीक्षा हेतु शान्तिकुञ्ज आये। पूज्य गुरुदेव-वंदनीया माताजी के दर्शन किए। माताजी ने भोजन प्रसाद हेतु कहा, पर एकादशी उपवास के कारण मैंने भोजन नहीं किया। केवल पतिदेव ने किया।

दूसरे दिन पुनः दर्शन, प्रणाम, यज्ञ किया। समय होने पर भोजन के लिये गये, तब माताजी भोजन से पूर्व एक रोटी व चटनी अपने कर कमलों से दिया करती थीं। दूसरे दिन भी मैंने रोटी व चटनी नहीं ली, क्योंकि प्रदोष व्रत था। माताजी ने कहा-''छोरी! तू भी थाली ले ले, प्रसाद खा ले।'' लेकिन मैं नहीं बैठी।

दोपहर में माताजी से वापस जाने की अनुमति लेने गये, तब उन्होंने कहा, ''यहाँ तो तूने भोजन नहीं किया। अब तुझे बाजार में जाकर दस रुपये का कुछ खिलायेगा। बेटा! उपवास का अर्थ कुछ त्याग करना होता है।''

माताजी की बात का गूढ़ अर्थ मैं नहीं समझ पाई। हम हरिद्वार चले गये। वहाँ जो हमने फल मिठाई लिये, वे ठीक दस रुपये के थे। अब तो माताजी के शब्द मेरे कानों में गूँजने लगे तथा पश्चात्ताप के आँसू भी बहने लगे।

अगले माह पुनः शान्तिकुञ्ज आये। गुरुदेव ने दीक्षा संस्कार कराया, किन्तु तब तक माताजी ने रोटी चटनी देना बंद कर दिया था। माताजी के हाथ का वैसा प्रसाद पाने का सुअवसर मुझे फिर कभी नहीं मिल पाया। मैं इस बात को पूर्णतः यहाँ आ जाने के बाद समझ पाई कि माताजी के उस प्रसाद में उनका कितना प्यार भरा था। उनके तप का वह महाप्रसाद था, जिसे मैंने ग्रहण नहीं किया, इसका पश्चात्ताप मुझे आज भी कम नहीं है।

डॉ. अमल कुमार दत्ता

मैं, अक्सर गुरुदेव से आध्यात्मिक प्रगति के लिये प्रश्न पूछता रहता था।

मैंने पूछा, ''गुरुदेव! आप सदैव विभिन्न प्रकार के संकल्प कराते रहते हैं, यदि इस बीच किसी का शरीर न रहा व संकल्प अधूरा रहा, तब क्या होगा?''

गुरुदेवः-बेटे! शान्तिकुञ्ज एक ऐसा स्थान है, जहाँ जो भी सत्संकल्प किये जायेंगे, पूर्ण होंगे। बस, आपका पूर्ण प्रयास होना चाहिए। यदि संकल्प के बीच शरीर न भी रहा तो भी मैं उसे पूर्ण कर दूँगा।

प्रश्नः- और यदि शरीर रहते संकल्प टूट जाय, तब क्या करें?

गुरुदेवः- फिर वही संकल्प करना चाहिए।

प्रश्नः- साधारण व्यक्ति जिसमें साधारण संस्कार हैं। हम अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिये क्या करें?

गुरुदेवः- सतत सम्बन्ध, सतत प्रयास।

प्रश्नः- आत्मा की आवाज कैसे सुनी जाय?

गुरुदेवः- अपना परिष्कार कर, श्रद्धा-विश्वास से, जीवन का आदर्श लक्ष्य तथा आत्मीयता का विस्तार करके सुनी जा सकती है।

प्रश्नः- दुख कैसे दूर किए जायें?

गुरुदेवः- अज्ञान, अभाव और आसक्ति को हटाकर दुख दूर किए जा सकते हैं।

2. यह तो गूँगे का गुड़ है

वे परिजन जो पूज्य गुरुदेव के साथ मथुरा से जुड़े और फिर उनके बुलाने पर शान्तिकुञ्ज भी आ गये। यहीं के हो कर रह गये। जिन्हें गुरुदेव ने नींव के पत्थर कहा है उनके पास इतने संस्मरण हैं कि यदि सबको प्रकाशित किया जाय तो वाङ्मय के 108 खण्ड भी कम पड़ जायेंगे। उनके निजी जीवन के अनुभवों को तो वे प्रकट भी नहीं करना चाहते। यदि कभी करते भी हैं तो उन्हें प्रकाशन में लाना नहीं चाहते। वे उन क्षणों को याद कर भाव-विभोर होकर बस यही कहते हैं, ''यह तो गूँगे का गुड़ है। जो स्वाद हमने चखा है, उसे बयान करने के लिये शब्द नहीं हैं। बेटा! हमारा जीवन सफल हो गया। हम तो जन्म-जन्मांतरों के लिये अपने गुरु के ऋणी हो गये हैं। हर जन्म उनके साथ रहें, बस यही तमन्ना है।''

एक बात जो सब कोई कहते हैं, वह यह कि गुरुदेव का जीवन-व्यवहार अति सरल और सादगी भरा था। उनके सादे वेश को देखकर पहली नज़र में तो हर कोई आश्चर्य से भर जाता था कि यही वे उच्च कोटि के संत हैं जिनसे मैं मिलने आया हूँ। संत इतने सरल भी होते हैं। जाने कौन सा चुंबक था, क्या आकर्षण था उनके भीतर कि फिर उस क्षण भर की मुलाकात में ही वह उनका होकर रह जाता था।

सादगी के आवरण में वे स्वयं के अलौकिक स्वरूप को छिपाये रहते थे। उनके साथ रहते हुए हमने अपनी आराध्य सत्ता के विभिन्न रूपों का दर्शन किया है। कभी-कभी हँसी-मजाक करते हुए या सहज बातचीत के क्रम में वे अपने-आप को प्रकट भी करते थे। अचानक कुछ ऐसे वाक्य बोल जाते कि हमें लगता कि कहीं वे अवतारी चेतना तो नहीं, परंतु जब तक हमारा ध्यान उनके संकेतों की ओर जाता, वे बात पलट देते थे।

जब कभी किसी परिजन पर कष्ट पड़ा या हृदय से किसी ने उन्हें पुकारा तब उन्होंने उसे अपने भगवत् स्वरूप के दर्शन भी कराये हैं। यहाँ, जो

परिजन उनके साथ लंबे समय तक रहे हैं, उनमें से कुछ थोड़े से परिजनों के थोड़े से संस्मरण दिये जा रहे हैं। शेष परिजनों के संस्मरण पाठकगण अगले संस्करण में पढ़ सकेंगे।

श्री देवराम पटेल

(श्री देवराम पटेल जी 1971 में मथुरा के विदाई समारोह के बाद पूज्य गुरुदेव के आदेशानुसार उनके साथ ही शान्तिकुञ्ज आ गये थे। तब से वे सपरिवार शान्तिकुञ्ज में ही स्थाई रूप से निवास कर रहे हैं। प्रस्तुत हैं,उनके संस्मरण उन्हीं के शब्दों में)

गुरुजी जब युग निर्माण की नींव रख रहे थे, तब उन्होंने स्वयं को सरलता व सादगी के आवरण में इस प्रकार छिपा कर रखा कि उनके साथ रहने वाला भी जान नहीं पाया कि वह साक्षात् भगवद् चेतना के साथ है। और जब लोगों ने उन्हें पहचानना प्रारंभ किया तब उन्होंने स्वयं को एक कमरे में कैद कर लिया। अपने जीवन काल के अंतिम कुछ वर्षों में गुरुजी ने सबसे मिलना छोड़ दिया था।

श्री देवराम पटेल जी बताते हैं कि मथुरा में, मैं जब शुरू–शुरू में आया तो एक दिन मैंने उनके पैर पकड़ लिये। मुझे पता नहीं चला कि क्या हुआ। मैं बहुत देर तक उनके पैर पकड़े रहा। जब बहुत देर हो गई तो गुरुजी बोले अब छोड़ दे और मेरे कंधे पकड़कर मुझे उठाया। फिर बोले, अब तो आ गये, अब कहाँ जाओगे? बात साधारण थी पर अलौकिक थी, क्योंकि उसके बाद मैं उन्हीं का हो गया। साधारण में भी कितनी असाधारण बात कह दी थी उन्होंने, इसका रहस्य तो वे ही जानते थे। 1969 में मैंने उनके दर्शन किये, 1969 में ही मैंने मथुरा में नौ दिन का सत्र किया। 1970 में तीन माह का समयदान और सन् 1971 में मथुरा से विदाई के समय गुरुजी के साथ मैं शान्तिकुञ्ज आ गया। शान्तिकुञ्ज आया तो फिर यहीं का हो गया।

शान्तिकुञ्ज का निर्माण

पटेल जी बताते हैं, गुरुदेव के साथ हरिद्वार आने वाले व शान्तिकुञ्ज के निर्माण कार्य की देखरेख करने वाले पहले कार्यकर्ता श्री रामचंद्र जी थे। सन् 1968 में रामचंद्र जी मथुरा आये थे। उसी समय गुरुजी ने हरिद्वार में शान्तिकुञ्ज

के लिये जमीन ली थी। उन्होंने रामचंद्र जी से कहा, ''तुम हमारे काम के लिये शान्तिकुञ्ज चलो।'' रामचंद्र जी बोले, ''गुरुजी, वहाँ रहने की कुछ व्यवस्था हो जाये, तब तो मैं जाऊँ।'' तब गुरुजी बोले, ''बनने पर तो बहुत लोग पहुँच जायेंगे। तुम बनाने में हमारा सहयोग करो।''

रामचंद्र जी गुरुजी के साथ हरिद्वार आ गये। यहाँ आकर एक झोंपड़ी बनाई गई। जिसमें रामचंद्र जी रहने लगे। उसमें केवल एक खाट डालने जितनी ही जगह थी। उन दिनों गुरुजी मथुरा में ही रहते थे। गुरुजी के जीवन में इतनी सादगी थी कि शान्तिकुञ्ज के निर्माण कार्य की देखरेख करने जब भी आते उसी झोंपड़ी में उनके लिये खाना बनता। रामचंद्र जी बाहर खाट बिछा देते। गुरुजी वहीं बैठ कर खना खा लेते। सोने के लिये सप्तऋषि आश्रम चले जाते।

एक बार रामचंद्र जी ने कहा, ''गुरुजी, कम से कम दो खाट पड़ने लायक जगह तो बना दो। आप बाहर बैठते हैं तो अच्छा नहीं लगता। गुरुजी बोले, ''कैदी जेल में रहता है न, तो इसको जेल मान लो।'' इस प्रकार कितनी सरलता से उन्होंने सामंजस्य बिठा कर चलने की बात समझा दी।

स्वयं के प्रति कठोर

गुरुजी अपने निजी खर्च के संबंध में बड़े कठोर रहते थे। यह सन् 1968-69 की बात है। शान्तिकुञ्ज अभी बन ही रहा था। चारों ओर जंगल था। ईंट लाने, ठेकेदार से बात करने व अन्य बहुत से कार्यों के लिये शहर जाना पड़ता था। उन दिनों इस क्षेत्र में आवागमन का कोई साधन नहीं था। गुरुजी के मन में आया एक साइकिल खरीद लेते हैं। अपने साथ ज्यादा पैसा वे लाये नहीं थे अतः आधा पैसा स्वयं दिया व आधा पैसा रामचंद्र जी से लिया और साइकिल खरीद ली गई। उसी साइकिल से रामचंद्र जी के साथ साइकिल पर पीछे बैठ कर ईंट भट्ठे वाले के पास चले जाते।

जहाँ भी जाते सामान नकद ही खरीदते थे उधार कभी नहीं करते थे, न ही किसी से अनावश्यक सेवा ही लेते। एक बार एक भट्ठे वाले के पास ईंट का आर्डर दिया और पैसा भी दिया। भट्ठे वाले ने कहा, ''हम आपको स्कूटर पर छोड़ देते हैं।'' इस पर गुरुजी बोले, ''नहीं, नहीं, हमारी तो रामचंद्र जी की साइकिल ही ठीक है।''

माताजी भी अपने लिये खर्च के मामले में बहुत ही कठोर थीं। अन्य सामान के विषय में भी समझातीं, ''देखो, कम कीमत में बढ़िया सामान होना चाहिये। दो-चार दुकान घूमो और दाम पूछो व सामान देखो। जहाँ कम दाम में बढ़िया सामान मिले, वहाँ से लो, क्योंकि नकद ले रहे हो।''

प्रारंभ में जब बगीचा लगाया गया तो गुरुजी रामचंद्र जी के साथ स्वयं सब नर्सरियों में जाते थे। वहाँ से पौध आदि खरीद कर लाते थे। बगीचा लगाने में उनकी मदद भी करते। स्वयं कुदाली लेकर गड्ढे भी बनाते। बारिश के दिनों में नेकर पहन लेते और सिर पर पॉलीथीन की थैली लपेट लेते। वे गड्ढे खोदते जाते और रामचंद्र जी बताया करते थे कि मैं, उनमें पौधे रोपता जाता।

गुरुजी का व्यवहार इतना सरल था कि उन्हें देखकर कोई समझ ही नहीं पाता था कि वे इतने बड़े महापुरुष हैं। एक बार वे नीचे किसी काम में व्यस्त थे। उन्हें भूख लगी। ठण्ड के दिन थे। बगीचे में टमाटर, मूली आदि लगा था। रामचंद्र जी पौधों को पानी दे रहे थे। उस समय यहाँ दो-चार ही परिवार थे। कोई मूली को पूछता तक नहीं था।

गुरुजी ने दो मूली उखाड़ी। रामचंद्र जी से उसे धुलवाया, कटवाया और बोले, ''जाओ, माताजी से नमक ले आओ'' और उन्होंने वहीं बैठकर मूली खा ली और बोले ''नाश्ता हो गया, चलो काम करते हैं।''

समय का सदुपयोग

गुरुजी समय को इतना महत्त्व देते थे कि किसी कारणवश एक क्षण भी यदि खाली हो तो उसके सदुपयोग की बात सोचते। एक दिन एक सज्जन उनसे मिलने आने वाले थे। उनको देर हो गई। गुरुजी उनका इंतजार कर रहे थे। उन्होंने सोचा, कोई और काम नहीं है तो चलो, भोजन ही कर लेते हैं। उन्होंने माताजी को फोन किया ''माताजी, भोजन करने आ जाऊँ।'' माताजी बोलीं, ''अभी तो एक ही बजा है!'' गुरुजी 3:00-4:00 बजे तक भोजन करते थे। बोले, ''अच्छा! अभी एक ही बजा है क्या? अच्छा! अच्छा! ठीक है।''

हम 10-11 बजे के लगभग कभी गुरुजी के पास जाते तो कभी-कभी वे लेख लिख रहे होते। हम चुप-चाप जाकर खड़े हो जाते और उनका लेखन पूरा होने का इंतजार करते। गुरुजी लेख पूरा हो जाने पर जब नज़र उठा कर मुझे खड़ा देखते तो कहते, ''अरे! कब से खड़े हो? बोल देते! तुम्हारा इतना समय

बरबाद नहीं होता।'' गुरुजी, ''आप लिख रहे थे। आपको डिस्टर्ब होता।'' ''अरे! मैं बाद में भी लिख लेता।'' इस प्रकार वे दूसरों के समय को भी महत्त्व देते थे।

कार्य की तल्लीनता

काम की धुन इतनी रहती थी कि एक बार सुबह-सुबह चार बजे ही सबको बुला लिया। हम सब आँख मलते हुए भागे-भागे गुरुजी के पास पहुँचे। जब कभी कोई महत्त्वपूर्ण योजना उनके मन में आती तो वे समय का इंतजार नहीं करते थे। कभी भी बुला लेते थे, फिर चाहे सुबह के चार ही क्यों न बजे हों ?

काम के आगे भोजन को भी उन्होंने कभी महत्त्व नहीं दिया। हम कभी भी पहुँच जाते थे। कभी-कभी समय का ध्यान नहीं रहता था, तो ऐसे समय भी पहुँच जाते, जब वे भोजन कर रहे होते। भोजन करना बीच में ही छोड़कर पूछते, ''बताओ क्या काम है ?'' मुझे अक्सर काम के ही सिलसिले में जाना पड़ता था। मैं चुप रहता, नहीं बताता तो भी खाना बीच में ही छोड़कर उठ जाते। कहते, ''अच्छा चलो।'' माताजी कभी-कभी स्नेह भरी नाराजगी प्रकट करतीं ''दुष्ट लोग, आचार्य जी को भोजन भी करने नहीं देते।''

भोजन ठीक से नहीं करने पर काम करते-करते उन्हें भूख भी लग जाती थी। माताजी उन्हें भुने चने दे देती थीं। कभी भूख लगने पर उन्हें ही मुट्ठी भर खा लेते।

उन दिनों गुड़िया दीदी, (गुरुजी की पोती) यहीं रहती थी। वह गुरुजी के आस पास डोलती रहती, कहती ''दादाजी, चीज दो।'' गुरुजी कहते, ''जा, माताजी से ले ले।'' वह कहती, ''दादाजी, आपके पास चने हैं न।'' गुरुजी हँसते और ''अच्छा, अच्छा! ले लो,'' कहकर उसे दे देते।

गुरुजी बड़े व्यावहारिक थे। एक दिन गुरुजी की खटिया के पास एक साँप आ गया और फन फैला कर बैठ गया। फुफकारने लगा। गुरुजी खटिया पर लेटे थे। जैसे ही उन्होंने देखा, तत्काल कहा, ''ये काल है, मारो इसे। किसी को काट देगा तो ?'' हम सब खड़े थे। सोच रहे थे, कैसे मारें ? गुरुजी बोले ''अच्छा! तुम लोग नहीं मारते। लाओ, मैं मार देता हूँ।'' उस समय जाँजगीर चाँपा के एक भाई, श्री छेदी लाल साहू जी आये हुए थे। वे तुरंत लाठी लेकर आये और उस साँप को मार दिया।

दिव्य शक्ति सम्पन्न गुरुदेव

गुरुजी दिव्य शक्तियों से सम्पन्न थे, पर उनका व्यवहार इतना सरल था कि जैसे बड़े साधारण हों। वे सदा स्वयं को छिपाये रहे। इसीलिये कहते भी थे, ''मुझे मेरा काम कर लेने दो, जिसके लिये मैं आया हूँ। अभी लोग जान जायेंगे, तो हर की पैड़ी तक लाईन लग जायेगी। इसलिये तुम लोग मुझे चुप-चाप काम कर लेने दो। मेरे जाने के बाद लोग मुझे जानेंगे।''

हम लोग कभी-कभी काम की अधिकता के कारण गुरुजी से मिलने नहीं जाते थे। सोचते थे कि काम तो गुरुजी का ही कर रहे हैं। व्यर्थ उनका भी और अपना भी समय क्यों खर्च करें। तब कभी-कभी गुरुजी कहते थे, तुम लोग अभी आ नहीं रहे हो। आगे चलकर मेरी चरण पादुका पर प्रणाम करने के लिये भी धक्के खाओगे, इतनी लम्बी लाईन लगी रहा करेगी।

मेरा परिवार गुरुजी से जुड़ा तो बहुत पहले से था पर मैं पहली बार जनवरी 1969, में बिलासपुर में गुरुजी से मिला। गुरुजी वहाँ एक सभा में आये थे। उस समय बिलासपुर में 'ग्रेजुएट कान्फ्रेंस, ठाकुर छेदीलाल सहकारी सभा कक्ष' में उन्होंने कहा था, ''यह स्थान नोट कर लो। मेरा यह भाषण नोट कर लो और समय नोट कर लो। ये भाषण मैं कहाँ-कहाँ कर रहा हूँ, पता लगा लेना।'' उस सभा में बिलासपुर के कर्मठ कार्यकर्ता श्री रामाधार विश्वकर्मा जी व उमाशंकर चतुर्वेदी जी भी थे। इन दोनों भाईयों ने बाद में पता लगाया था। गुरुजी का वह प्रवचन उसी समय में पाँच जगहों में हुआ था। जिसमें से एक कलकत्ता, एक ग्वालियर में हुआ था।

एक बार गुरुजी ने पत्र व्यवहार के क्रम में बुलाया। एक चिट्ठी दिखाते हुए उन्होंने पूछा, ''इसे जानते हो?'' उस समय चौके में टीकमगढ़ की एक लड़की रहती थी, सुधा श्रीवास्तव, उसके पिता हरी राम श्रीवास्तव जी का पत्र था। मैंने कहा, ''जानता हूँ गुरुजी, सुधा के पिता जी हैं।'' पत्र में समाचार लिखा था, उन्हें पुत्र प्रप्ति हुई है। गुरुजी बताने लगे, ''यह साल भर पहले आया था और मेरे साथ घूमने गया था। मैंने इसे खोद-खोद कर पूछा तब इसने बस इतना ही बताया कि मेरी छः लड़कियाँ हैं।''(गुरुजी हर मिलने वाले से उसका हाल-चाल, कष्ट-कठिनाई पूछते थे।)

फिर बोले, ''बेटा, इसे माताजी की तरफ से चिट्ठी लिख देना कि तुम्हारी सारी लड़कियों की शादी हम अच्छे घरों में कराएंगे और तुम्हारा लड़का संस्कारवान् होगा।'' ❀

गुरुजी अपने संकल्पों के बड़े पक्के थे। जो एक बार निश्चय कर लिया है वह फिर टूट नहीं सकता। मथुरा छोड़ने पर उन्होंने अपने निजी परिवार के कार्यों से मुक्त हो जाने का संकल्प ले लिया था। एक बार माताजी बिमार थीं। सतीश भाई साहब को चिट्ठी लिखनी थी। माताजी जिस भाई के द्वारा उन्हें पत्र लिखवाती थीं, वे किसी कारणवश अपने घर गये हुये थे। गुरुजी बोले चिट्ठी पटेल लिख देगा। माताजी बोलीं अगर देवराम लिख देगा तो सतीश यह समझेगा कि माताजी बहुत बीमार हैं। वह परेशान हो जायेगा, इसलिये लाईये मैं ही अपने हाथ से धीरे-धीरे लिख देती हूँ। माताजी ने ही चिट्ठी लिखी किन्तु गुरुजी ने नहीं लिखी। कारण, वे मथुरा से विदाई ले चुके थे। अपने नियमों के प्रति बहुत कठोर थे। परिवार से विदाई ले ली, तो ले ली। सारा विश्व ही मेरा परिवार है। फिर उतने छोटे परिवार को ही कैसा महत्त्व ?

शान्तिकुञ्ज की महत्ता

गुरुजी शान्तिकुञ्ज में ठहरने, विशेषत: रात रुकने को बहुत महत्त्व देते थे। माताजी अपनी गोष्ठियों में भी कहती थीं, ''बेटा, रात को जब तुम लोग सो जाते हो, तब हम और गुरुजी एक-एक के सिरहाने जाते हैं और तुम लोगों की ब्रेन वाशिंग करते हैं। जन्म-जन्मांतरों के कुसंस्कारों को साफ करते हैं।''

ठहरने के संदर्भ में गुरुजी चाहते थे कि परिजन शान्तिकुञ्ज में ही ठहरें भले ही थोड़ी-बहुत असुविधा होती हो पर आश्रम के वातावरण में ही रहें। एक बार श्री रामाधार जी शान्तिकुञ्ज आये। उन दिनों शान्तिकुञ्ज बहुत छोटा था। रामाधार जी परिवार समेत आये थे व परमार्थ आश्रम में ठहरे थे। गुरुजी ने पूछा, ''बेटा कहाँ ठहरा है ?'' वह बोले, ''गुरुजी, यहाँ दिक्कत होती इसलिये परमार्थ आश्रम में ठहरा हूँ।'' गुरुजी ने तुरंत डॉक्टर साहब को बुलाया और बोले, ''प्रणव, इन बच्चों के लिये शान्तिकुञ्ज में जगह नहीं है, इसलिये तुम लोग भी बाहर ही ठहरो।'' फिर उन्हें बोले, ''जाओ तुरंत अपना सामान लाओ और यहीं ठहरो। जैसी भी जगह मिले।''

उन्हें अपनी भूल का एहसास हुआ। वे तुरंत गये, अपना सामान ले आये और शान्तिकुञ्ज में ही रुके। ❀

गुरुजी प्रेरणाप्रद चीजों को सदा महत्त्व देते थे। गांधी पिक्चर तब नई-नई आई थी। हरिद्वार में भी दिखाई जा रही थी। उस समय गुरुजी ने सबको 2-2 रुपये दिये थे और गांधी पिक्चर देखने के लिये कहा था।

इसी प्रकार तब स्लाईड प्रोजेक्टर अभी नया-नया ही आया था। उन्होंने मिशन के प्रचार प्रसार के लिये स्लाईड बनवाईं और बाकायदा उसका प्रशिक्षण दिला कर परिजनों को प्रचार-प्रसार हेतु तैयार व प्रोत्साहित किया।

स्नेह सलिला माताजी

माताजी, गुरुजी की छाया के रूप में रहीं। उन्हें लोग जान भी नहीं पाये। वे गुरुजी की आड़ में स्वयं को छिपाये रहीं। लोगों ने उनका स्वरुप तो तब जाना जब वे अश्वमेध यज्ञों में गईं। लोगों ने माताजी के प्रवचन सुने, उनके आशीर्वादों से निहाल हुए, तब लोग उन्हें जान पाये। गुरुजी का संदेश देश-विदेश में फैला कर, थोड़े ही समय में अपना स्वरूप दिखा कर जल्दी ही उन्होंने अपनी लीला समेट ली।

माताजी का पत्राचार

माताजी के पास हजारों चिट्ठियाँ आती थीं। सबको पढ़ना, जवाब देना कठिन काम था, पर वे बड़ी सहजता से करती चली जाती थीं। प्रारंभ के दिनों में हमें भी एक दिन में 80-90 पत्र लिखने पड़ते थे। उतनी चिट्ठी पढ़ना और जवाब देना सरल काम नहीं था। हम कैसे करते थे, यह हमें भी नहीं पता। ऐसा लगता था जैसे कोई दिमाग में बैठ कर लिखा रहा है। कभी-कभार एक-आध चिट्ठी का जवाब हम पढ़ लेते तो स्वयं आश्चर्य करते थे। ऐसी विलक्षण शक्ति थी माताजी की।

कभी-कभी माताजी बोलतीं, तुम लोग सोचते हो बढ़िया चिट्ठी से बढ़िया आशीर्वाद मिलेगा। हम आशीर्वाद देंगे, तभी तो आशीर्वाद मिलेगा? कलेक्टर की चिट्ठी कलर्क लिखता है, पर जब तक उस पर कलेक्टर के दस्तखत नहीं होते, उसकी क्या कीमत? जब हम दस्तखत करेंगे, तभी तो उसकी कीमत होगी।

वह तो बस माँ थीं

वात्सल्य इतना था कि अपनी माँ भी क्या ध्यान रखती होगी? उन दिनों माताजी के पास ऊपर चौके में ही चाय बनती थी। हम पहले चाय नहीं पीते थे। यहाँ आये तो माताजी के दर्शन के पश्चात् चुप-चाप नीचे उतरने लगते

तो माताजी जाने कैसे देख लेती थी। तुरंत बोलतीं, छोरा भाग रहा है, बुला। फिर पूछतीं चाय नहीं पी ? यहाँ ठण्ड है, चाय नहीं पियेगा तो मरेगा क्या ? चल ! चाय पी।

कभी-कभी परिजनों को डाँट कर भी भोजन करा देतीं। एक बार एक परिजन श्री एस. एन. सिंह जी आये। वे बोले, ''माताजी मैं तो रोटी ही खाता हूँ। चावल मुझे नुक्सान करता है।'' इस पर माताजी बोलीं, ''देख बेटा, इसे चावल ही चावल खिलाना। देखती हूँ, कैसे नुक्सान करता है ?'' और वास्तव में उन्हें कुछ नहीं हुआ।

प्राण प्रत्यावर्तन शिविर में आखिरी दिन सबको पूड़ी-कचौड़ी खिलाती थीं। साथ में रास्ते के लिये बाँध कर भी देती थीं। कहतीं, ''इतने दिन उपवास किया है, मन ललचायेगा, पर तुम लोग बाहर की चीज मत खाना। इसे ले जाओ, रास्ते में यही खाना। घर पहुँचकर घर का बना खाना ही खाना।'' ❁

श्री देवराम पटेल जी की पत्नी बताती हैं कि जब वे सन् 1971 में शान्तिकुञ्ज आईं तो उन दिनों में यहाँ चारों ओर जंगल था। कोई विशेष आबादी भी नहीं थी। कुछ भी सामान लाना हो तो शहर जाना पड़ता था। मैं भरा-पूरा घर छोड़ कर आई थी, मेरी भाषा भी थोड़ी अलग थी। सो मुझे घर की बहुत याद आती थी। पर माताजी तो माताजी, वह सबके मन की बात जान जाती थीं। एक दिन मुझे बुलाया और बोलीं, ''घर की याद आती है ? माँ की याद आती है ? मैं हूँ न तेरी माँ। तू मेरे पास आ जाया कर। मैं तुम्हारी माँ, बाप सब हूँ। लो पानी पियो।'' उन्होंने मुझे अपने हाथ से पानी पिलाया। मेरा मन भर आया, पर उस दिन के बाद मुझे कभी घर की याद नहीं आई। लगा ही नहीं कि मैं घर से कहीं बाहर हूँ।

सुबह माताजी के साथ आरती करते। भजन गाते। माताजी कुछ न कुछ बात व चुटकुला आदि सुनाकर खूब हँसाती। एक बार बोलीं, ''चलो छोरियो ! चूल्हा बनाते हैं।'' गये तो देखा, माताजी ने खूब सुंदर मिट्टी का चूल्हा बना कर रखा था। क्योंकि हम छत्तीसगढ़ के हैं, सो हमें रोटी बनानी नहीं आती थी। माताजी ने अपने हाथ से हमें रोटी बेलना सिखाया। कहतीं, ''आ छोरी ! तुझे रोटी बनाना सिखाऊँ।'' बाजरे की रोटी, मक्के की रोटी, पूरी, कचौरी, माताजी

सब कुछ बनाना जानती थीं। रोटी तो वो फटाफट हाथ से ही बनाती थीं। उसके लिये उन्हें चकले-बेलन की जरूरत नहीं पड़ती थी।

माताजी सब काम जानती थीं। शायद ही कोई काम ऐसा होगा, जो उनसे छूटा हो। गाना-बजाना, लिखना-पढ़ना, सिलना आदि वे सब जानती थीं। प्रारंभ के एक दो साल तो ऐसे कटे, जैसे हम माताजी के साथ पिकनिक मना रहे हों। माताजी दिन भर हँसते-हँसाते किसी न किसी काम में व्यस्त रखती थीं। दोपहर के समय खाना बनाना व गाना-बजाना सब होता। माताजी ढोलक बहुत बढ़िया बजाती थीं।

वे हारमोनियम लेकर बैठतीं तो किसी भी गीत की धुन तुरंत निकाल लेती थीं। माताजी का प्रिय गीत था, ''मैंने तेरी गीता गाई। टूटी फूटी भाषा में भर, जग के कानों तक पहुँचाई। .....गंगा से गंगा जल लेकर, गंगा को जलधार चढ़ाई।'' उनके पास से हम लोग काम करके, नाच-गाकर आनंदित होकर लौटते। वे सदा कुछ न कुछ नया सिखाती रहतीं।

उनकी दृष्टि हर चीज पर रहती। एक बार बोलीं, ''छोरी तेरा ब्लाऊज पुराना हो रहा है।'' फिर उन्होंने कपड़ा निकाला और बोलीं, ''चल, मैं तुझे ब्लाऊज सिलना सिखाती हूँ।'' उन्होंने दराती (हसिया) से ब्लाऊज काटा। मैं देख कर हैरान रह गई। सूई-धागा लेकर हम लोगों को ब्लाऊज-पेटीकोट सिलना सिखाया। स्वयं के लिये भी सिला। हम सबने सूई-धागे से ब्लाऊज-पेटीकोट सिल कर पहने।

माताजी, हम लोगों की चूड़ी, बिंदी, साड़ी-ब्लाऊज आदि हर छोटी-बड़ी चीज का ध्यान रखती थीं। कभी-कभी बुलातीं और पूछतीं, कोई तकलीफ तो नहीं है, फिर लड्डू, मिठाई, चूड़ी-बिन्दी, साड़ी आदि देकर झोली भर कर भेजतीं। जाने कौन सा ऐसा अक्षय भण्डार था उनके पास। फिर धीरे-धीरे कन्या शिविर आदि शुरू हुए तो माताजी की व्यस्तता बढ़ती गई। उतनी व्यस्तता में भी वे एक-एक का ध्यान रखती थीं। कभी भी बुलातीं, ''उस छोरी के पास साड़ी नहीं है,'' कहकर, बुलाकर साड़ी देतीं। उसके पास अमुक चीज नहीं है, कहकर कुछ देतीं। इस प्रकार सबकी छोटी से छोटी आवश्यकता का भी वह ध्यान रखती थीं। इतना ध्यान तो साक्षात् जगदम्बा ही रख सकती हैं। ❁

कभी-कभी हम लोग मिलने जाते, तब माताजी लिख रही होतीं। वे हम लोगों से बात भी करती जातीं और लिखती भी जातीं। सब हाल-चाल पूछतीं और एक दो बात कहकर खूब हँसाती भी, पर हमने देखा इतना सब करते हुए भी कलम उनकी बराबर चलती रहती। बात करते-करते भी कलम रुकती नहीं थी। जैसे दोनों अलग-अलग दिमाग से किये जा रहे हों।

तू तो जा नहीं सकती

सन् 1986 में मैं बहुत बीमार पड़ी। मुझे लकवा हो गया था। मैं बिल्कुल बिस्तर से लग गई। मेरा उठना-बैठना, चलना-फिरना, खाना-पीना आदि सब बंद हो गया था। डॉक्टर बोले कि अब यह नहीं बचेंगी। एक माह से भी अधिक समय हो गया था। मैं बिस्तर से उठ भी नहीं सकती थी। सबने मेरे बचने की उम्मीद छोड़ दी थी। तब बच्चे लोग मुझे गोद में उठाकर माताजी के दर्शनों के लिये ले गये। माताजी ने मुझे देखा और कहा, ''तुझे, क्या हुआ है छोरी?'' ऐसा कहकर, एक थपकी टाँग पर, एक कंधे पर और एक पीठ पर दी। बस तीन थपकी दीं और बोलीं, ''बेटी, क्या हो गया? चिंता मत कर..., ठीक हो जाएगी। बिल्कुल ठीक हो जाएगी... बिल्कुल ठीक हो जाएगी... बिल्कुल ठीक हो जाएगी।'' तीन बार कहा फिर बोलीं, ''तू तो जा नहीं सकती। तेरे छोटे-छोटे बच्चे हैं। चिंता मत कर, तू ठीक हो जाएगी।''

माताजी के आशीर्वाद से मैं अगले ही दिन न केवल बिस्तर से उठकर खड़ी हुई, बल्कि स्वयं चल कर शौचालय तक गई। मुझे चलते देखकर बच्चे चिल्लाने लगे, ''माँ, चल मत, तू गिर जाएगी।''

उन दिनों हम ऋतंभरा भवन में रहते थे। ''मैं चल रही हूँ!'' सुनकर पास-पड़ौस वाले सब कार्यकर्ता इकट्ठे हो गए। सब मुझे चलते हुए देखकर हैरान थे। जिसने भी सुना, सब काम छोड़कर मुझे देखने दौड़ पड़ा। मुझे आज भी वो दृश्य याद है, जब मुझे देखने के लिये मेला जैसा लग गया था। उस दिन सबने माताजी की शक्ति को अपनी आँखों से देखा था। उस भगवती की लीला को जाना था।

उस दिन के बाद से आज तक 25 वर्ष (1986-2011) हो गये, मैं पूर्णतः स्वस्थ हूँ। ❀

श्रीमती यशोदा शर्मा

(श्री गौरीशंकर शर्मा जी 1970 में भीलवाड़ा में पूज्य गुरुदेव के सम्पर्क में आये। यशोदा बहिन ने 1975 में शान्तिकुञ्ज में कन्या सत्र किया। कालांतर में श्री गौरी शंकर शर्मा जी एवं श्रीमती यशोदा शर्मा 1982 में पूज्य गुरुदेव के बुलाने पर स्थाई रूप से शान्तिकुञ्ज आ गये। वर्तमान में श्री गौरीशंकर शर्मा जी, शान्तिकुञ्ज में व्यवस्थापक के रूप में कार्यरत हैं।)

लाली! खाना क्यों नहीं खाया ?

मैं जब कन्या सत्र में शान्तिकुञ्ज आई थी तो हमारा ग्रुप सबसे बड़ा ग्रुप था। उस सत्र में 250 लड़कियाँ थीं। कुछ विवाहित भी थीं; पर सबके लिये एक सा नियम था। हम लोगों का बैच सर्वाधिक शरारती भी गिना गया।

हमारा सत्र शुरु हुए 5-6 दिन ही हुए थे। हम लोग देखते थे कि कभी-कभी कुछ सीनियर लड़कियाँ घण्टी लगने से पहले ही खाना खा लेती हैं। उस दिन हमें भी थोड़ा जल्दी भूख लग आई। हमारे साथ की बहनें भी बोलीं कि आज अभी से भूख लग रही है। हमने सोचा, चलो आज हम भी जल्दी भोजन कर लेते हैं।

हम चार लोग ऊपर भोजनालय में गए और थाली और पानी का गिलास लेकर बैठ गए। भारती अम्मा और सोमा अम्मा रोटी सेक रही थीं। हमें यूँ बैठे देखकर वे आपस में इशारा कर मुस्कुराईं; पर बोलीं कुछ नहीं। हमें लगा कि शायद हमसे कुछ गल्ती हो गई है। पर फिर सोचा कि अब तो बैठ ही गए हैं, अब क्या करें? बैठे रहते हैं। वे दोनों कुछ देर तक आपस में इशारा कर मुस्कुराती रहीं, फिर अचानक भारती अम्मा उठीं और हमारे सामने से थाली उठाकर ले गईं, बोलीं कुछ नहीं।

हमें बहुत अपमान महसूस हुआ। हम चुपचाप नीचे उतर आये। भोजन की घण्टी बजी, सबने भोजन कर लिया; पर हम चारों भोजन करने नहीं गये। भूख तो बहुत लग रही थी; पर मन में आता कि इतने अपमान के बाद अब कैसे जायें?

उन दिनों जब सब भोजन करते थे तो माताजी सामने बैठती थीं। इतने लोगों में भी उन्हें पता चल गया कि हम चारों भोजन करने नहीं आये हैं। उन्होंने

हमें बुलवाया। हिम्मत बटोर कर हम लोग गये। माताजी अपने कमरे में थीं। हम वहीं चले गये। माताजी ने पूछा, ''लाली! खाना क्यों नहीं खाया?'' माताजी के इतना पूछते ही हमारी रुलाई फूट गई। हम फफक-फफक कर रोने लगे और फिर सब बात बताई। कहा, ''माताजी वो हमें हमारी गलती बतातीं, हमें समझा देतीं, हमें बुरा नहीं लगता। पर इस व्यवहार से अब हम खाना खाने कैसे जायें?''

माताजी ने भारती अम्मा और सोमा अम्मा को बुलाया और उक्त व्यवहार के लिये डाँट लगाई। फिर आगे से किसी के भी साथ ऐसा व्यवहार करने के लिये मना किया। फिर बोलीं, ''अब इन छोरियों के लिये गरम-गरम खाना बनाओ।'' माताजी ने दुबारा खाना बनवाया और अपने सामने बिठाकर खूब लाड़-प्यार लुटाते हुए खाना खिलाया। वह क्षण ऐसे थे कि अपनी सगी माँ भी शायद इतना प्यार न लुटाती होगी। उस दिन माँ जगदम्बा का प्यार पाकर हम धन्य हो गए। ऐसे न जाने कितने ही क्षण अनेकों परिजन अपने हृदय में समेटे हुए हैं। आज भी जब हम उन पलों को याद करते हैं तो वो पल सजीव हो उठते हैं।

समझाने की कला

गुरुजी का समझाने का तरीका बड़े गजब का था। कन्या शिविर में अक्सर गुरुदेव पारिवारिकता के संबंध में प्रवचन करते और छोटी-छोटी बातें भी इस ढंग से बताते कि समझ में आ जाता कि उनका कितना महत्त्व है और वे मन में गहराई तक उतरती चली जातीं।

गुरुदेव कहते, ''बच्चियो, तुम जहाँ भी रहो परिवार में स्नेह-आत्मीयता का संचार करती रहो। सबको मिलाने का काम करो, बिखेरने का नहीं। अगर तुम्हारे पास कोई बहू अपनी सास की निंदा करती है, तो कहना अरे! तुम्हारी सास तो तुम्हारी बहुत तारीफ कर रही थी। अगर तुम्हारे पास कोई सास अपनी बहू की निंदा करती है, तो कहना अरे! आपकी बहू तो आपकी बहुत तारीफ कर रही थी। इस तरह परिवार में कलह की जगह प्रेम का संचार होता है। तुम यहाँ से जाकर यही करना। रूठे को मनाना, टूटे को बनाना।'' ❁

बड़ी से बड़ी बात को भी वे बड़े ही मधुर ढंग से समझाते, बिल्कुल एक सच्चे अभिभावक की तरह। यह कन्या सत्र की बात है। हमारा बैच सबसे बड़ा और शरारती बैच था। एक दिन कुछ लड़कियाँ भारती अम्मा जी से किसी

कारण नाराज हो गईं। और भी कुछ छोटे-मोटे कारणों से अधिकतर लड़कियाँ उनसे नाराज रहती थीं। सो उन लड़कियों ने मिलकर योजना बनाई कि आज हम हड़ताल करेंगे। जब भोजन की घण्टी लगी तो न तो वे खुद भोजन करने गईं और न ही किसी और को जाने दिया। दो-तीन बार घण्टी बजी पर कोई नहीं गया। तब माताजी को बताया गया। माताजी ने दो-तीन लड़कियों को बुलवाया और सब बात मालूम की।

गुरुजी तक बात पहुँची। गुरुजी ने सबकी गोष्ठी बुलाई और बड़े प्यार से बोले, अच्छा! तुम सब लोग नाराज हो! सब आज भूखे हो! बेटा, भोजन से कैसी नाराजगी? इस तरह तो तुम लोग स्वयं को ही सजा दे रहे हो। जिससे नाराज हो, उसका तो मजा हो गया। उसका काम बच गया। इतना सब खाना फिकेगा तो नहीं। अभी नहीं खाया तो शाम को खाना पड़ेगा।''

''बेटा, नाराजगी प्रकट करने का यह तरीका सही नहीं है। सही तरीका तो यह है कि तुम लोग दुगना खाना खा जाओ। जिससे कि वह परेशान हो, उसे दुबारा भोजन बनाना पड़े। स्वयं को सजा देने में क्या समझदारी है?'' उनकी प्यार-दुलार भरी डाँट सुनकर सबकी नाराजगी दूर हो गई। सबको भूख भी लगी ही थी। सबने फटाफट थाली उठाई और भोजन करने बैठ गये। ०००

गुरुजी माताजी को बहुत साज-श्रृंगार पसंद नहीं था। बस माताजी मेंहंदी सदा लगाकर रखती थीं। उनके पैरों में मेंहंदी सदा लगी रहती थी। शान्तिकुञ्ज में वशिष्ठ, विश्वामित्र भवन के सामने व प्रवचन हॉल के दोनों ओर उन्होंने मेंहंदी के बगीचे लगवा रखे थे। हम सबसे तो वे मेंहंदी लगाने के लिये कहती ही थीं, साथ ही शिविर में भी जो बहनें आतीं उनसे भी कहतीं, ''ये तुम्हारा मायका है। मेंहंदी जरूर लगा कर जाना।''

सावन के महीने में वे झूला डलवाती थीं। हम लोग खूब झूला-झूलते और मेहंदी लगाते। उनके साथ बिताये क्षण तो वास्तव में अविस्मरणीय हैं। जितना काम करते, उतनी ही मस्ती भी करते थे।

गुरुजी-माताजी मनोरंजन को भी बहुत महत्त्व देते थे।

उनका कहना था कि मनोरंजन स्वस्थ ढंग का होना चाहिये जिसमें आनंद तो आये ही साथ में कुछ सीखने को भी मिलता रहे। वे चाहते थे कि हमारे बच्चे-बच्चियाँ अपने परिवार से दूर यहाँ आये हैं, तो उन्हें अपने परिवार

की याद न सताये और वे सब कुछ सीख सकें। उनके अंदर बहुमुखी प्रतिभा हो। इसके लिये वे कभी-कभी मनोरंजन का कार्यक्रम भी रखते थे। जिसमें प्रेरणाप्रद दृष्टांत आधारित एकांकी, लघु नाटिका, प्रहसन, गीत-संगीत, प्रवचन आदि प्रस्तुत करवाये जाते। गुरुजी बैण्ड, परेड, लाठी चलाना आदि का प्रशिक्षण ही नहीं दिलवाते थे बल्कि, उसका प्रदर्शन भी करवाते और माताजी के साथ स्वयं भी उसमें शामिल होते।

1976 -77 में गुरुजी ने टी.वी. मंगवाया और हम सबने माताजी के साथ बैठकर सबसे पहली फिल्म जो देखी वह थी आनंद और दूसरी अनुराग। मनोरंजन के साथ-साथ सबको उसकी प्रेरणाएँ भी समझाईं। गुरुजी को आनंद फिल्म बहुत पसंद आई थी। वह अक्सर उसके बारे में चर्चा किया करते थे। राजेश खन्ना का नाम उन्हें याद हो गया था। किसी को ज़्यादा बना-ठना देखते तो कहते, ''तू राजेश खन्ना है क्या? बेटा! लोकसेवी को सादगी से रहना चाहिये।''

उस जमाने में जादूगर, कठपुतली वाले अपना खेल दिखाने, बाईस्कोप वाले बाईस्कोप लेकर गली मोहल्ले में आते थे। कभी कोई शान्तिकुञ्ज की तरफ आ जाता तो वह भी दिखवाते और बाद में समझाते भी कि यह सब हाथ की सफाई है।

सन् 1985-86 के आस पास महात्मा गाँधी जी पर फिल्म बनी। जब हरिद्वार की टाकीज़ में वह आई तो गुरुजी ने माताजी से कहकर सबको 2-2 रुपये दिये और कहा, ''जाओ सब लोग गाँधी पिक्चर देख कर आओ। उससे संकल्पनिष्ठा की, देश सेवा की प्रेरणा लेकर आओ।'' जिसने भी देखी एक प्रेरणा मिली कि देश के हित के लिये हमें किस प्रकार निज सुख वैभव का त्याग करना चाहिये और समाज के लिये काम करना चाहिये।

स्वावलंबन का महत्त्व

माताजी सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, खिलौने बनाना, जैम, जैली, अचार, मुरब्बे आदि विभिन्न प्रकार के स्वावलंबन का प्रशिक्षण भी दिलाती थीं। यदि कोई किसी विशेष विद्या का जानकार आ जाता और उसे सिखा सकना संभव होता तो गुरुजी-माताजी कहते, ''हमारी छोरियों को भी सब सिखा कर जाना।'' साथ ही हम लोगों को भी उसका महत्त्व बताकर सीखने के लिये प्रेरित करते।

वे कहती थीं कि महिलाओं को जरूरत के सब काम सीखना चाहिये। कृष्णा उपाध्याय भाभी जी बताती हैं कि जब वे शान्तिकुञ्ज आईं तब थोड़े से ही परिवार शान्तिकुञ्ज में रहते थे। मुश्किल से 10-12 परिवार थे। माताजी हम सबको सिलाई, कढ़ाई, बुनाई आदि सीखने के लिये कहतीं। शुरू के दिनों में सिलाई मशीन नहीं थी तो उन्होंने सूई-धागे से भी सिलना सिखाया। फिर सिलाई मशीनें भी मँगाई गईं। कौशल्या जीजी सबको सिलाई सिखाती थीं। माताजी सबका ध्यान रखती थीं, कौन कितना सीख रहा है। मैंने सिलना तो सीख लिया था पर, कटिंग करने में मुझे डर लगता था। एक दिन माताजी ने कौशल्या जीजी से कहा कि अब तुम उपाध्याय की बहू को कटिंग करके नहीं दोगी। वह खुद कटिंग करेगी फिर सिलकर मुझे दिखायेगी।

माताजी ने बच्चों के कपड़े-नेकर, कमीज़ आदि हम लोगों से सिलवाये। मैंने डरते-डरते कटिंग की और सिलाई करके माताजी को दिखाया। जब हम लोग उन्हें दिखाने गये तो बोलीं, ''देखो अब तुम्हारे इतने पैसे बच गये न। नहीं तो अभी इतने पैसे दर्जी को देने पड़ते। अब इस बचत से तुम लोग दूसरी आवश्यक चीजें खरीद सकते हो।'' इस प्रकार माताजी ने स्वावलंबन के साथ-साथ मेहनत करना, बचत करना और कम पैसे में भी कुशलतापूर्वक अपनी गृहस्थी चलाने के गुर हम लोगों को सिखाये।

तेरा प्रमोशन हुआ ?

सन् 1974 में मेरे पति श्री गौरीशंकर शर्मा जी जब प्राणप्रत्यावर्तन शिविर पूरा होने पर गुरुजी से मिलने गये तो गुरुजी ने पूछा, ''तेरा प्रमोशन हुआ या नहीं।'' इन्होंने कहा, ''नहीं हुआ गुरुजी।'' तब गुरुदेव ने कहा, ''जा, तेरा प्रमोशन हम करवा देंगे।'' जब वे जोधपुर वापिस आये तो पहली जनवरी के दिन आफिस में बैठे सोच रहे थे, अगर मेरा प्रमोशन हो जाता तो इतना वेतन हो जाता कि में आराम से वी.आर.एस. ले लेता। इतनी देर में इनके एक दोस्त ने आकर कहा, ''शर्मा, भई बधाई हो, तेरा प्रमोशन हो गया।'' इन्हें लगा मज़ाक कर रहे हैं, भला यह कैसे संभव है। लेकिन जब लैटर देखा तो विश्वास हुआ और गुरुजी की बात याद आई, ''जा मैं तेरा प्रमोशन करा दूँगा।''

उनको ठीक तो मैं करूँगा

सन् 1982 में हम पूर्ण रूप से शान्तिकुञ्ज आ गये। बहुत से संस्मरण हैं, उनके अलौकिक स्वरूप की एक झलक जो हमारे पूरे परिवार के लिये चमत्कार स्वरूप है वह बताती हूँ। यह घटना 19 जनवरी सन् 1989 की है। मेरे देवर, श्री हरिशंकर शर्मा, जो दिल्ली में सर्विस करते हैं, परिवार सहित घूमने गये थे। उन्हें भीलवाड़ा से फोन आया कि पिताजी कोमा में हैं, शीघ्र आ जावें। उन्होंने आगे का प्रोग्राम कैन्सिल कर दिया व सीधे भीलवाड़ा पहुँच गये। देखा, पिता जी कोमा में थे। किसी बात की सुध नहीं। सो परिवार को वहीं घर पर छोड़कर वे सीधे हरिद्वार आ गये। यहाँ आकर घर में इतना ही बताया कि मैं आप लोगों को लेने आया हूँ, पिताजी कोमा में हैं और मैं गुरुजी से मिलने जा रहा हूँ।

वे सीधे ऊपर गुरुजी के पास चले गये व गुरुजी से बताया कि गुरुदेव, पिताजी कोमा में हैं, अत: मैं भैया-भाभी को लेने आया हूँ। गुरुजी ने कहा- ''अच्छा! पिताजी कोमा में हैं?'' कुछ रुके, फिर बोले-''क्या नाम है?'' देवरजी ने बताया, ''श्री सीताराम शर्मा।''''क्या उमर है?'' 80 वर्ष।''कहाँ रहते हैं?''''भीलवाड़ा'' उस समय गुरुदेव कमरे में ही अपने दोनों हाथ पीछे की ओर बाँधे टहल रहे थे, उन्होंने कागज पेन उठाया और अपने प्रश्नों के उत्तर नोट किए।

कुछ देर सोचते रहे फिर कहा-''अच्छा! तू लेने आया है तो ले जा, देख कर आ जायगा। उनको ठीक तो मैं करूँगा।'' श्री हरिशंकर जी को कुछ समझ में नहीं आया। सोचने लगे देख कर आ जायगा! कैसे कह रहे हैं? पिताजी तो कोमा में हैं, हो सकता है कुछ दिन रुकना पड़े। मन ही मन सब तर्क-वितर्क चलता रहा। उन्होंने गुरुजी से कुछ कहा नहीं। इतने में गौरीशंकर जी ऊपर पहुँच गये। गुरुदेव ने उनके कुछ कहने से पूर्व ही कहा- ''यह तुझे लेने आया है। ऐसा कर, तू घर चला जा। पिताजी को देखकर आ जाना।'' उन्होंने आदेश शिरोधार्य किया और दोनों भाई आ गये तथा हम सबने भीलवाड़ा हेतु प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर देखा, पिताजी एकदम स्वस्थ थे। डाक्टरों सहित सभी आश्चर्य चकित थे। 'यह कैसे हुआ?'

घर में सब से बातचीत की तो पता चला जिस क्षण गुरुवर ने पता ठिकाना नोट किया था, उसी क्षण से उनमें चेतना आने लगी थी और हमारे पहुँचने तक तो वे अच्छे भी हो गये थे। वृद्धावस्था-रुग्णता के कारण थोड़ी

कमजोरी तो थी, पर उन्हें देखकर कोई कोमा की स्थिति का अन्दाजा भी नहीं लगा सकता था। हम सभी को गुरुजी के उस कथन ''उनको ठीक तो मैं करूँगा'' और ''देखकर आ जायेगा'' का रहस्य समझ में आ गया था।

ठीक होने के एक माह बाद पिताजी शान्तिकुञ्ज आये। दूसरे दिन माताजी से मिलने गए, तो माताजी ने पिता जी से हाल-चाल पूछा। फिर बोलीं, ''बहू खाना खिलाती है कि नहीं?''

क्योंकि, भोजन में परहेज चल रहा था। लम्बे समय से वे केवल उबला भोजन ही ले रहे थे। सो बोले, ''अब, खाना कहाँ माताजी? उबले भोजन में कुछ स्वाद तो होता नहीं।''

माताजी ने कहा, ''आप तो राजस्थान के हो। आपको तो दाल-बाटी-चूरमा बहुत अच्छा लगता होगा?''

तो वे बोले, ''कहाँ! दाल बाटी चूरमा?'' और पिता जी ने उन्हें दाल-बाटी-चूरमा पर एक कविता सुनाई।

कविता सुनने के बाद माताजी ने कहा, ''बेटा! कल मैं तुम्हें दाल-बाटी-चूरमा, सब खिलाऊँगी। उसके बाद डॉ. जो कहे सो करना।''

अगले दिन माताजी ने टिफिन भर कर दाल-बाटी-चूरमा भेजा व पिता जी ने छक कर खाया। हमें डर भी लग रहा था कि एक-डेढ़ महीने बाद पिताजी भारी भोजन कर रहे हैं, पर माताजी पर विश्वास भी था सो कुछ नहीं बोले। उस दिन से पिताजी ने सब परहेज छोड़ दिया। 3-4 दिन बाद प्रणाम के समय माताजी ने पूछा, ''छोरी! तेरे ससुर की तबीयत कैसी है?''

मैंने कहा, ''माताजी तबीयत तो ठीक है, पर परहेज नहीं करते, सो डर लगता है।''

तब माताजी ने कहा, ''छोरी! तू तो, उनको जो इच्छा हो सो खिला। नहीं तो तेरे भी मन में रह जाएगी और उनको भी इसके लिये वापस आना पड़ेगा।''

इसके बाद वे साल भर स्वस्थ रहे। अगले वर्ष फिर उसी तारीख को बीमार पड़े और 21 जनवरी 1990 को शरीर छोड़ दिया। आज भी जब हम उन पलों को याद करते हैं, तो ऐसा लगता है, जैसे उनकी सब इच्छाओं को पूर्ण करने व जन्म-मरण के चक्र से मुक्त करने के लिये ही गुरुदेव ने उन्हें एक वर्ष का जीवन दान दिया था। ❁

श्री महेंद्र शर्मा जी एवं श्रीमती मुक्ति शर्मा

(श्री महेन्द्र शर्मा जी 1969 में भिलाई में पूज्य गुरुदेव के सम्पर्क में आये। उसके बाद लगातार संपर्क में रहे, क्षेत्र में ही समयदान करते रहे, टोलियों में जाते रहे। 1977 में पूज्य गुरुदेव के बुलाने पर सपरिवार स्थाई रूप से शान्तिकुञ्ज आ गये।)

तू नहीं माँगता, तो मुझे दे

1969 में हम गुरुदेव से जुड़े। मैं उन दिनों भिलाई में काम करता था। भिलाई में गुरुजी का कार्यक्रम था। उसी कार्यक्रम में मैंने दीक्षा ली। अगले दिन मैं पण्डाल में सबसे पीछे बैठा था। गुरुजी ने एक कार्यकर्ता से मेरी ओर इशारा करके कहा, ''उस लड़के को बुलाओ।'' वे मुझे गुरुजी के पास ले गये। गुरुजी ने मुझसे पूछा-''तुम सिगरेट पीते हो?'' मैंने कहा, ''नहीं, गुरुजी'' गुरुजी ने कहा-''मुझसे झूठ बोलते हो? आज के बाद सिगरेट मत पीना।'' मैं कभी-कभी सिगरेट पीता था। मुझे हैरानी हुई, गुरुजी को कैसे पता चला। उस दिन के बाद मैंने कभी सिगरेट नहीं पी।

उसके बाद मैं मथुरा आने-जाने लगा। दादा गुरुजी के निर्देश पर, सन् 1971 में पूज्य गुरुदेव ने मथुरा छोड़ दिया। पूज्य गुरुदेव मथुरा विदाई सम्मेलन के बाद हिमालय चले गए। कहाँ गए? कब लौटेंगे? किसी को भी इस सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं थी। कुछ समीपवर्ती लोगों के पूछने पर उन्होंने कहा कि वे तो अपनी मार्गदर्शक सत्ता के हाथों की कठपुतली भर हैं।

हमें बड़ा दुःख हुआ। अब आगे साधना के बारे में किससे पूछेंगे? कौन मार्गदर्शन देगा? २ वर्ष का समय निकल गया। कैसे गया, पता भी नहीं लगा? अचानक सुनने में आया गुरुदेव हिमालय से लौट आए हैं और विशेष साधनाएँ सिखाने हेतु कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को बुला रहे हैं। हमने भी हिम्मत करके प्राण-प्रत्यावर्तन साधना के लिए आवेदन भेजा। आश्चर्य तब हुआ जब भिलाई के सभी कार्यकर्त्ताओं को छोड़कर स्वीकृति हमारे ही नाम आई। सभी ने इसे गुरु कृपा कहा। सत्र प्रारम्भ हुआ अन्तिम दिन पूज्य गुरुदेव ने सबको एक-एक करके कमरे में बुलाया और बात की। वन्दनीया माताजी भी साथ ही थीं। उन्होंने माताजी की ओर संकेत करते हुए कहा कि ''इस लड़के को

पहचान गई ? ये वो ही है।'' वन्दनीया माताजी के ''अच्छा-अच्छा'' कहते ही हमारे अन्दर कम्पन सा हो गया। गुरुदेव ने पास बैठाकर कहा कि ''जीवन का लक्ष्य क्या है, पता है ?'' हमने कहा, ''हिमालय जाना चाहते हैं।'' उन्होंने कहा, ''अभी समय अनुकूल नहीं है, आगे हम अवश्य ले जाएँगे।'' और बोले, ''आज जो भी इच्छा हो, हमसे माँग लो।'' हमने कहा, ''यदि इस वरदान को आप भविष्य के लिए सुरक्षित रख सकें तो अच्छा हो।'' वे अपने स्थान से उठे और बोले, ''तू नहीं माँगता, तो मुझे दे। मैं माँगता हूँ।'' भारी चिन्ता में पड़ते हुए हमने इतना ही पूछा ''आप क्या चाहते हैं ?'' उन्होंने कहा, ''सम्पूर्ण समर्पण करना है। तुम्हारा श्रम हमारे लिए, चिन्तन हमारे लिए, समय भी अब हमारा ही होगा। तुम अपने विषय में कुछ भी नहीं जानते हो।'' बिना हमारे बताए ही उन्होंने हमारा गाँव, घर, सम्बन्धी सभी बता दिए। फिर कहा, ''पिछली बार तुम बीच में भाग गए थे। इस बार ऐसा न हो।'' और तत्काल उन्होंने अपने लैटर पैड से कागज निकालकर हमसे पूर्ण समर्पण का संकल्प लिखवा लिया। उस दिन के बाद से आज तक कठिन से कठिन समय में भी वन्दनीया माताजी और गुरुदेव सामने खड़े दिखाई देते हैं।

मेरे लिए क्या लाई है ?

मैं शान्तिकुञ्ज में ही पहली बार गुरुजी-माताजी से मिली। भिलाई की ही एक कार्यकर्ता, विजया बहन मुझे अपने साथ ले कर आई थी। उनका मन था हरितालिका तीज की पूजा शान्तिकुञ्ज में करेंगे। उसी अनुसार कार्यक्रम बनाया और 4-5 दिन के लिये ही आये थे। मैं बेटे मनीष को पड़ोसी के पास छोड़ कर आई थी।

शान्तिकुञ्ज पहुँचकर जैसे ही मैं माताजी से मिली, पता नहीं मुझे क्या हुआ, मेरी रुलाई फूट गई। माताजी ने अपनी गोद में मुझे भर लिया और मेरे सिर पर प्यार भरा हाथ फिराने लगीं। मैं और भी जोर से रोने लगी। विजया बहन मुझे चुप हो जाने के लिये बोलीं तो माताजी बोलीं, ''रो लेने दे इसे, जी हल्का हो जायेगा। बहुत दिनों बाद माँ से मिली है न तो रोना तो आयेगा ही।'' और माताजी प्यार से मेरा सिर सहलाती रहीं। विजया बहिन ने माताजी से कहा, ''माताजी अब तो आप इन्हें पकड़ ही लो।'' तब माताजी बोलीं, ''अब तो मैंने जकड़ लिया, अब कहाँ जायेगी ?''

जब हम लोग हरितालिका तीज की पूजा करने गये, तो गुरुजी-माताजी दोनों ही बैठे थे। बहिनें उन्हें रोली-चन्दन लगाकर पूजा कर रही थीं। दोनों ऐसे मस्त बैठे थे, जैसे साक्षात् शिव-पार्वती बैठे हों। बहिनों ने रोली-चावल लगाकर उन्हें खूब रंग दिया था। जब मेरी बारी आयी, तो माताजी गुरुजी से बोलीं, ''ये है हमारी बेटी, सुबह मैंने बताया था न। पहचाना इसे?'' गुरुजी ने गौर से मुझे देखा। मेरे हाथ में माताजी के लिए भेंट थी। उसे देखकर माताजी बोलीं, ''तू तो हरितालिका व्रत नहीं करती। तेरे यहाँ तो करवा चौथ होती है।'' मैंने कहा, ''जी माताजी, पर मैंने सोचा पूजा तो कर ही लेती हूँ।'' फिर बोलीं, ''ये सब क्या है? इसकी क्या जरूरत थी? बेटा, तेरा तो सब कुछ मेरा ही है।'' जल्दी-जल्दी में गुरुजी के लिए, मैं कुछ खरीद नहीं पाई थी, सो उनके लिए मैंने कुछ पैसे हाथ में रखे। उन्हें देखकर विजया बहिन ने कहा, ''गुरुजी को पैसे मत चढ़ा देना। वे बहुत नाराज होंगे।'' सो मैंने वह पैसे रूमाल में रख दिये। जैसे ही गुरुजी को प्रणाम किया, वे बोले, ''मेरे लिए क्या लाई है?'' मेरे हाथ में माताजी का दिया प्रसाद था, मैंने कहा, ''यही है।'' उन्होंने कहा, ''ला खिला।'' और मुँह खोल दिया। मेरे हाथ में आधा केला था, मैंने वही खिला दिया। विजया बहन ने कहा, ''गुरुजी मैं भी खिलाऊँगी।'' तो उन्होंने उनके हाथ से भी प्रसाद खा लिया। ये थी मेरी गुरुजी-माताजी से पहली मुलाकात। माताजी ने पूरे दस दिन हमें रोका। उसके बाद ही वापस आने दिया।

एक वर्ष की स्वर्ण जयंति साधना

इसके पश्चात् सन् 76 में गुरुजी ने हम लोगों से एक वर्ष की स्वर्ण साधना करवाई, और भी बहुत सारे परिजनों से करवाई थी। उस समय हम लोग भिलाई में ही थे। सूर्योदय से 45 मिनट पहले इस साधना को प्रारम्भ करना होता था। पहले सोहम् साधना, फिर तीनों शरीरों की साधना, और अन्त में खेचरी मुद्रा करनी होती थी। ठीक सूर्योदय के साथ अर्घ्य देकर साधना समाप्त होती थी। सबका समय निश्चित था। हमने नियमित रूप से यह साधना की। उस समय हमें खूब अनुभव हुए। साधनाकाल में प्राय: ही गुरुजी-माताजी दिखाई देते। कभी-कभी वे श्रीरामकृष्ण परमहंस व माँ शारदा के रूप में भी दिखाई देते। इस साधना के पश्चात् उन्होंने हमें शान्तिकुञ्ज बुला लिया।

शान्तिकुञ्ज में जब करवाचौथ पड़ी, तो मैंने माताजी से पूजा के विषय में पूछा। माताजी ने कहा, ''नीचे सब बहनें पूजा करती हैं, तुम भी उनके संग ही कर लेना।'' मैंने कहा, ''माताजी, जब साक्षात शिव-पार्वती हैं, तो मैं मिट्टी के शिव-पार्वती क्यों पूजूँ?'' माताजी बोलीं, ''अच्छा ठीक है, जा गुरुजी से पूछ ले।'' मैंने गुरुजी से पूछा तो वे खड़े हो गये और बोले, ''अभी चलना है?'' मैंने कहा, ''नहीं गुरुजी, जब माताजी बुलाएंगी।'' वे बोले, ''अच्छा, अच्छा! और बैठ गये।''

सभी बहनों को खबर भिजवाई गई। उस समय अधिकांश परिवार ब्रह्मवर्चस में रहते थे। सब बहनें अपना सब काम छोड़कर फटाफट जो कुछ पास में था, लेकर पहुँच गईं। गुरुजी-माताजी दोनों बैठ गये। हम सबने उनकी पूजा की रोली-चंदन भोग आदि लगाया। फिर गुरुजी ने सबको चाय पीने के लिये कहा। किसी बहन ने कहा, ''चाँद को अर्घ्य देने के बाद ही कुछ खायेंगे-पीयेंगे।'' इस पर गुरुजी बोले, ''हमसे बड़ा भी कोई सूरज-चाँद है क्या?'' माताजी ने सबके लिये चाय बनवाई।

उस दिन रविवार था। तब तक शान्तिकुञ्ज में टी.वी. आ चुका था। माताजी ने सबको पिक्चर दिखाई। खाना बनवाया। हलवा-पूरी आदि और सबको खाना भी खिला दिया और इस सबके बीच चंदा मामा को तो सब भूल ही गये। जब घर लौटे तो रास्ते में चंद्रमा को अर्घ्य देने की बात याद आई। जल भरकर जो लोटे आदि रखे थे, वह तो हम वहीं भूल आये थे। घर पहुँचकर जिस किसी ने पहले से जो कुछ तैयारी की हुई थी, उसी से सबने छत पर जाकर पूजा कर ली और चाँद को अर्घ्य दे दिया। पर गुरुजी-माताजी की पूजा करके सब अति प्रसन्न थे। उस दिन से गुरुजी-माताजी करवाचौथ की पूजा में भी बैठने लगे थे। उसके पहले तक केवल हरितालिका तीज पर ही बैठते थे। मिश्रा भाभी जी परात, लोटा आदि लातीं हम लोग दोनों के चरण धोते बाद में उस जल को चरणामृत मान कर पी जाते थे।

महेंद्र शर्मा जी बताते हैं कि गुरुजी के निर्देशानुसार सन् 73 में मैंने वानप्रस्थ लिया और नौकरी करने के साथ-साथ क्षेत्रों में टोलियों में भी जाता रहा। सन् 77 में मैं उनकी आज्ञानुसार सपरिवार पूर्ण रूप से शान्तिकुञ्ज आ गया। गुरुजी की सादगी, उनकी करुणा, मितव्ययिता, छोटी-छोटी बातों द्वारा

शिक्षण देना, बहुत सी ऐसी बातें हैं जिन्होंने जीवन पर गहरी छाप छोड़ी। उनकी बहुत बड़ी विशेषता थी, स्वयं के प्रति कठोर और दूसरों के प्रति उदार। यही शिक्षण उन्होंने हम लोंगों को भी दिया। वे कहते थे, ''बेटा! लोक सेवी को ऐसा ही होना चहिये, अपने प्रति कठोर व अन्यों के प्रति उदार।''

वे सादगी को बहुत महत्त्व देते थे।

अभी मैं नया-नया ही आया था। एक दिन गुरुजी ने मुझे मजदूर लाने के लिये भेजा। मैं बढ़िया से तैयार होकर, नया कुर्ता पहनकर गया। मुझे कोई मजदूर मिला नहीं। लौटकर गुरुजी से कहा, गुरुजी मजदूर तो मिला नहीं। गुरुजी ने मेरी ओर देखा और बोले, ''250 रुपये का चश्मा लगायेगा। बढ़िया कुर्ता पहनेगा, राजेश खन्ना बनकर जाएगा तो क्या तुझे मजदूर मिलेगा?'' ❁ एक दिन कुछ नेता लोग गुरुजी से मिलने आये। गुरुजी ने मुलाकात के बाद उनको भोजन कराया। चौके की बहनों से कहा, ''बच्चियो! भोजन तुम लोग परोसोगे। महेन्द्र और शिव प्रसाद बरतन उठायेंगे।''

जब वे लोग भोजन कर चुके तो हम दोनों ने बरतन उठाये। गुरुजी देख रहे थे। बोले, ''अब इन्हें माँज कर भी रखो।''

नेता जी आ रहे हैं सोचकर, हम लोग बढ़िया से प्रैस इत्यादि करके नये कुर्ते पहन कर गये थे। बरतन माँजे तो उन पर पानी के छींटे पड़ने स्वाभाविक थे।

जब बरतन मँज गये, तो गुरुजी ने बुलाया। कुर्ते पर छींटे पड़े देख कर बोले, ''तुम लोग इस तरह फूहड़ तरीके से काम करते हो? कुर्ता खराब कर लिया।'' फिर बोले, ''अच्छा! तुम लोग बहुत बड़े आदमी हो..! बहुत बड़े बाप के बेटे हो..! टाटा, बिरला हो..! बढ़िया नया-नया कुर्ता पहन कर काम करोगे। ऐसे काम होता है?''

''खादी की दुकान पर जाओ और वहाँ से सस्ती वाली, खादी की आधी बाजू की बनियान (हाफ कुर्ता) ले कर आओ। उसे पहन कर काम किया करो। जब कभी टोली में जाओ, बाहर जाओ, तो अच्छा, बढ़िया कुर्ता पहनो। खादी की आधी बाजू की बनियान पहन कर काम करोगे तो कपड़े खराब नहीं होंगे।'' इस प्रकार वे किफायत से रहना भी सिखाते थे।

गुरुजी की समय साधना

उनका जीवन बहुत पारदर्शी था। वे कुछ भी छिपाते नहीं थे। साथ ही, वे एक पल भी नष्ट नहीं करते थे। एक दिन सुबह-सुबह ही उन्होंने हम सबको बुलाया, और बोले, ''बच्चो, आज मैंने कुछ लिखा नहीं। मुझे रात को बुखार आ गया था। प्रणव से गोली भी ले ली, पर कुछ हुआ नहीं, नींद भी नहीं आ रही थी। तो मैंने सोचा क्या करूँ? लेटे-लेटे मैंने दो-चार साल की भविष्य की योजना ही बना डाली। देखो, कागज पर नोट कर दी है। उस योजना को बताने और समझाने के लिए ही मैंने गोष्ठी बुलाई है।'' ❁

एक दिन उन्होंने बताया, ''मैं रात को 12 बजे उठा। आज मेरे पास लिखने को कुछ नहीं था, पर फिर भी अपनी कुर्सी पर बैठ गया। जब तक मुझे लिखना होता है, तब तक मैं बैठा। मेरी पलकें बता रही थीं कि कितनी भारी हैं, फिर भी मैं सोया नहीं। कारण, यह मन बड़ा शैतान है, सो जाता, तो कल फिर सोने को कहता, इसलिए मैं उठकर अपनी कुर्सी पर बैठ गया। बेटा, इसी प्रकार मन पर आरूढ़ रहना चाहिये।'' ❁

एक बार फिर उन्होंने सुबह-सुबह ही गोष्ठी बुलाई और बोले, ''रात को मुझे नींद नहीं आ रही थी, हल्का सा बुखार भी लग रहा था। लेटे-लेटे सोचता रहा, और मैंने प्रज्ञा पुराण के एक खण्ड का प्रारूप बना लिया। देखो, बढ़िया है न। योजना भी बना डाली है। इसे चार खण्डों में निकालेंगे। अच्छा! अब चार दिन सुबह-सुबह मेरे पास मत आना। तुम लोगों को चार दिन का काम आज ही बता देता हूँ।'' उन्होंने सबको काम बताया, और बोले, ''तुम लोग जाते-जाते बाहर से ताला लगा देना।''

चार दिन में उन्होंने प्रज्ञा पुराण के सब श्लोक लिख डाले, और हम लोगों को यह कहकर सौंप दिया, अब इसमें कहानियाँ जोड़ देना। इस प्रकार प्रज्ञा पुराण तैयार हो गया।

हम लोग सोचते थे, कि गुरुजी को बुखार नहीं आना चाहिये। बुखार में भी बाबा कुछ न कुछ सोचते रहते हैं और सालों की योजना बना डालते हैं। फिर हम लोगों को भिड़ा देते हैं। ❁

इसी क्रम में मुझे एक प्रसंग और स्मरण आता है, जिसे चर्चा के दौरान भोपाल के श्री शान्तिलाल आनंद ने सुनाया था।

शायद सन् 1988 की बात होगी। एक दिन शांतिलाल जी और गौड़ जी नीचे गायत्री नगर में टहल रहे थे। इतने में ही श्री संजय सिंह जो पूर्व में उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री रह चुके थे व उस समय भी मंत्री थे, वहाँ पधारे।

दोनों ने उन्हें नमस्कार किया। उन्होंने गुरुजी से शाम को छह बजे मिलने का समय ले रखा था और उस समय छह बजकर पैंतालीस मिनट हो रहे थे। किन्तु यह बात श्री गौड़ जी को मालूम नहीं थी।

वे बड़ी आवभगत के साथ उन्हें शान्तिकुञ्ज प्रतीक्षालय तक ले गये। शान्तिलाल जी भी साथ थे। उन दोनों को नीचे रुकने के लिये कहकर गौड़ जी स्वयं ऊपर गये और गुरुजी से संजय सिंह जी के आने की बात बताई।

गुरुजी सुनते ही गौड़ जी से नाराजगी भरे शब्दों में बोले- ''इन्हें समय का महत्त्व नहीं है, लौटा दो। मैंने छह बजे का समय दिया था, सात बज रहे हैं। अब मैं नहीं मिलूँगा। कहो कल समय पर मिलें।''

गौड़ जी को तो मानो काठ मार गया हो। क्या करें ? कुछ सूझ नहीं रहा था। मंत्री जी से कैसे कहें, कि गुरुजी नहीं मिलेंगे, पर कहना तो पड़ेगा ही। सो विनम्रता से हाथ जोड़कर कहा- ''साहब, उन्होंने आपको शायद छह बजे का समय दिया था। वे उस समय तक आपका इन्तजार कर रहे थे। अब वे दूसरे महत्त्वपूर्ण कार्य में लग चुके हैं। उन्होंने कल पुनः बुलाया है, समय का ध्यान रखेंगे।''

''महापुरुषों का समय बहुत मूल्यवान है।'' कहकर, बेचारे मंत्री जी ने अपनी गलती सरल भाव से स्वीकार की व दूसरे दिन ठीक समय पर आकर गुरुदेव से मुलाकात की। ❀

सन् 1989 में एक दिन हम कुछ लोगों डॉ. प्रणव भाई साहब, उपाध्याय जी, सोनी जी, कपिल जी आदि को बुलाया और बोले, ''मैंने बहुत कुछ लिख दिया। सोचता हूँ, आने वाली पीढ़ियों के लिये गीता जैसा मार्गदर्शन दे देता हूँ। इसलिये देखो, मैंने ये किताब लिखी है, पढ़कर देखो कैसी है ?'' उस पुस्तक का नाम था, 'सतयुग की वापसी' हम सबको पुस्तक बड़े गजब की लगी। फिर कुछ दिनों में ही उन्होंने 'इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य, परिवर्तन के महान क्षण, आद्यशक्ति गायत्री की समर्थ साधना, युग की माँग प्रतिभा परिष्कार,

इक्कीसवीं सदी का गंगावतरण आदि' पुस्तकें लिखीं और हम लोगों से कहा कि तुम लोगों ने भले ही मेरा सारा साहित्य पढ़ लिया हो, पर इनको जरूर पढ़ना और आने वाले लोगों को इन्हें जरूर पढ़ाना। हमने पूछा गुरुजी, ''इस सेट का नाम क्या होगा?'' गुरुजी बोले, ''ये 'क्रांतिधर्मी साहित्य' होगा।'' हम लोगों ने लगभग छः माह तक बाकायदा कक्षाएँ चलाकर, इस साहित्य को पढ़ा और पढ़ाया, पर जितनी बार भी पढ़ते, उतनी बार कुछ नया ही मिलता।

एक बार गुरुजी को बहुमूत्र की शिकायत हो गयी, वे मीटिंग करते-करते उठकर चल देते थे। जब तक हम सोचते, जिज्ञासा करते, तब तक वे लौट आते, और स्वयं ही बता देते, कि आज-कल मुझे बार-बार पेशाब लग जाती है। इस उम्र में हो जाता है, शायद कुछ समस्या होगी, ठीक हो जायेगी। इस प्रकार वे अपने दैनिक जीवन की छोटी-छोटी बातें भी छिपाते नहीं थे।

एक बार उन्होंने गोष्ठी में बताया, ''नालंदा और तक्षशिला दो विश्वविद्यालय थे। इनसे भी बड़ा विश्वविद्यालय बनायेंगे।'' इसलिए उन्होंने प्रतीक स्वरूप दो हॉलों का नाम तक्षशिला और नालंदा रखा, और वहाँ पर प्रशिक्षण भी प्रारंभ करवा दिये।

मितव्ययिता उनके जीवन में कूट-कूटकर भरी थी।

अपने लिये तो गुरुजी-माताजी दोनों ही एक पैसा अतिरिक्त खर्च नहीं कर सकते थे। औसत भारतीय नागरिक के स्तर का जीवन जीना उनका संकल्प था। वही अनुशासन उन्होंने हमारे लिये भी बनाया।

एक बार श्री गजाधर सोनी जी भाई साहब ने देखा कि गुरुजी का जूता फट रहा है। उनके मन में आया कि वे गुरुजी के लिये जूता खरीद लायें। उन्होंने गुरुजी से पूछा और जूता खरीद लाये। गुरुजी बहुत महँगा जूता नहीं पहनते थे पर गजाधर जी के मन में आया कि वे थोड़ा अच्छा वाला जूता खरीदेंगे। उन दिनों आज के जैसे महँगाई नहीं थी। गुरुजी जिस ब्रांड का जूता पहनते थे वह 11 रुपये का था। गजाधर जी को लगा थोड़ा अच्छा वाला खरीद लेता हूँ। उन्होंने दो जोड़ी खरीदी। मन में सोचा कि एक गुरुजी के चरणों से स्पर्श करा कर अपनी पूजा में स्थापित करूँगा। वे जूता खरीद कर गुरुजी के पास पहुँचे। जैसे ही गुरुजी ने उसे पहना तुरंत बोले, ''यह तो वैसा नहीं है जैसा मैं पहनता हूँ। यह जरूर महँगा होगा। कितने का लाये हो?'' सोनी जी ने

कहा, ''गुरुजी आप तो बस पहन लीजिये।'' गुरुजी ने कहा, ''नहीं तू बता, तू कितने का लाया है ?'' सोनी जी ने बताया, ''गुरुजी 21 रुपये का है।'' सुनकर गुरुजी बोले, ''मैं जो पहनता हूँ, वह 11 रुपये में आ जाता है। इतने में तो दो जोड़ी जूते आ जाते और कितने दिन निकल जाते। इसे ले जाओ और पहाड़िया जी से कहना, कि वे इन्हें लौटा कर वही जूता खरीद लायेंगे, जो मैं पहनता हूँ।'' ❁

गुरुजी के बाथरूम का दरवाजा बहुत पुराना हो गया था। बाहर से तो ठीक दिखता था परंतु अंदर से सड़ गया था। वह कभी भी टूट सकता था। उपाध्याय जी व प्रणव जी भी उसे बदलने के पक्ष में थे। परंतु समस्या यह थी कि गुरुजी से कहे कौन ? वह तो तैयार नहीं होंगे।

योजना बनाई गई कि गुरुजी को बरामदे में ले जाकर बातचीत में व्यस्त कर लेंगे। इतनी देर में बढ़ई दरवाजे का नाप ले लेगा। उन दिनों बाबूराम बढ़ई यहाँ काम करता था। उसे समझा दिया गया और योजना अनुसार उसने नाप भी ले लिया। उसे कहा भी गया था कि तुम गुरुजी के सामने मत आना किंतु वह गुरुजी को प्रणाम करने का लोभ संवरण नहीं कर पाया। सो नाप लेने के बाद उसने बरामदे में आकर गुरुजी को प्रणाम किया। उसके प्रणाम करते ही गुरुजी ने उससे पूछा, ''तुम किस काम से आये ?'' उसने कहा, ''बस गुरुजी, आपको प्रणाम करने आया था।'' गुरुजी को उसके जवाब से संतुष्टि नहीं हुई। बोले, ''नहीं, तुम जरूर किसी काम से आये होगे। यह, तुम्हें लाया होगा। बताओ किस काम से आये थे ?'' उसने डरते-डरते कहा, ''गुरुजी, बस थोड़ा बाथरूम के दरवाजे का नाप लेना था।'' गुरुजी तुरंत समझ गये और कहा, ''किसने कहा बदलने को ? हमने तो कहा नहीं।'' फिर मेरी ओर मुखातिब होकर बोले, ''क्यों, उसे क्या हुआ है ?'' मैंने बताया, ''गुरुजी, वह अंदर से सड़ गया है। बदलना आवश्यक है।'' गुरुजी ने दरवाजे को खोला, बंद किया। फिर बोले, ''इसे केवल मैं ही तो इस्तेमाल करता हूँ। यह ठीक है। अभी काफी दिन तक चलेगा। तुमको मालूम है दरवाजा 1000 रुपये का आता है। हमारा दरवाजा ठीक है। हमारा दरवाजा नहीं बदलेगा।'' और मैं उनकी डाँट सुनकर चुप-चाप नीचे आ गया। उनकी दृष्टि में यह अपव्यय था। जब तक किसी वस्तु से काम चल रहा है तब तक उसको काम में लाया जाना चाहिये। वे अपने प्रति थोड़ा भी अतिरिक्त खर्च सहन नहीं करते थे। ❁

ऐसे ही माताजी के पलंग का एक पाया हिल गया था। बार- बार कील आदि ठोंक कर उसे ठीक करते। वह बार-बार बाहर निकल जाता। उसे बदलना जरूरी था। माताजी, जब सोने के लिये ऊपर जातीं तो उस पाये के पास गुरुजी ने कुछ ईंटें रखवा दी थीं। उन्हें पहले पाये के पास लगा दिया जाता, फिर माताजी उस पलंग पर लेटतीं। पलंग भी काफी पुराना हो गया था। गुरुजी से पलंग बदलने के लिये पूछा तो उन्होंने मना कर दिया। बोले, ''1200 रुपये में पलंग आता है। इसे ही ठीक कर दो काम चलता रहेगा।''

हम भाईयों ने योजना बनाई कि हम लोग माताजी के लिये पलंग बनायेंगे। माताजी के लिये नया पलंग बनाया गया। अब उसे कमरे में पहुँचाना था। योजना अनुसार डॉ. प्रणव जी गुरुजी को ब्रह्मवर्चस ले गये। पीछे से हम लोगों ने पलंग बदल दिया।

रात को जब माताजी लेटने लगीं, तो ईंट रखने कोई नहीं गया। गुरुजी ने लड़कियों से कहा, ''सुनो-सुनो! यहाँ कहीं चार ईंटें रखी होंगी, लाओ।'' ईंटें तो हम उठा लाये थे, सो मिलती कहाँ? गुरुजी बोले, ''वो महेंद्र कहीं रख गया होगा, उसे बुलाओ।'' मैं गया। मैंने माताजी से कहा, ''आप बैठो।'' माताजी बैठ गईं। मैंने कहा, ''पलंग हिल तो नहीं रहा। आज ईंट की जरूरत नहीं है।'' गुरुजी बोले, ''क्यों नहीं है? ईंट लगाओ।'' माताजी बोलीं, ''जब हिल नहीं रहा है, तो रहने दो।'' गुरुजी अपने पलंग से उठे और बोले, ''हिल नहीं रहा है!'' उसे हिलाया-डुलाया, फिर बिस्तर उठा कर देखा और बोले, ''बदल तो नहीं दिया?'' अब तो सच बताना ही था। मैंने कहा, ''जी साहब, बदल दिया।'' गुरुजी थोड़ा नाराज हुए और बोले, ''1200 रुपये में पलंग आता है। तुम्हें मालूम है? एक-एक पैसा जनता देती है। वह कितनी कठिनाई से कमाती है, फिर हमें भेजती है।''

मैंने कहा गुरुजी, ''हम लोग माताजी के लिये कुछ नहीं कर सकते क्या? वह हमारी भी तो माताजी हैं।'' गुरुजी बोले, ''जरूर करो, पर अपनी कमाई में से करना। मैं जनता की कमाई में से अपने लिये एक भी पैसा खर्च नहीं कर सकता। और देखो, तुम लोग भी कभी जनता की कमाई में से अपने लिये एक भी पैसा खर्च मत करना।'' ❀

मुक्ति दीदी बताती हैं कि गुरुजी की कुर्सी की गद्दी बहुत पुरानी हो गई थी। थोड़ी फटने जैसी भी हो गई थी। हम लोग उसके लिये कपड़ा खरीद लाये। जब गुरुजी प्रवचन करने गये तो उसका नाप ले लिया और फिर अगले दिन उसी समय पर उसे चढ़ा भी दिया। गुरुजी ने लौट कर गद्दी पर नया कवर देखा तो पूरी खोजबीन की, किसने बनाया? कहाँ से आया? किसी ने बता दिया कि मुक्ति दीदी को देखा था। शायद उन्हीं का काम होगा। अगले दिन उन्होंने मुझसे पूछा, ''गद्दी तू ठीक कर गई क्या?'' मैंने कहा, ''जी पिताजी। पुरानी हो रही थी, थोड़ी फट भी रही थी। आपके पास लोग-बाग मिलने आते रहते हैं, तो ठीक नहीं लग रही थी।''

गुरुजी थोड़ी देर चुप रहे। फिर बोले, ''अच्छा बेटा! ठीक है। यह तो ठीक लग रही है।'' पर गुरुजी सहज में पैसा खर्च नहीं करने देते थे। वे मितव्ययिता को बहुत महत्त्व देते थे। माताजी भी सहज में पैसा खर्च करने नहीं देती थीं। एक बार मैं माताजी के लिये एक साड़ी खरीद लाई। माताजी ने जब देखी तो बोलीं, ''छोरी! मेरे पास तो पर्याप्त साड़ी रखी हैं और तू तो महँगी साड़ी ले आई। ऐसा कर, इसे वापस कर दे।'' मैंने कहा, ''नहीं माताजी, ज्यादा महँगी नहीं है।'' माताजी बोलीं, ''तेरे पास बिल होगा, दिखा। मैं किसी को भेज दूँगी, वो वापस कर आयेगा।'' मैंने कहा, ''माताजी मेरे पास बिल नहीं है और यह वापस भी नहीं हो सकती। मैंने आपके लिये खरीदी है। आपको इसे पहनना ही है।'' मैंने माताजी के साथ जिद की तो माताजी बोलीं, ''अच्छा, तू जिद करती है, तो रख लेती हूँ पर देख! पैसा तेरा है, तो भी वो हमारा ही है। आगे से खर्च करना तो देख कर करना।'' ❀

गुरुजी गोष्ठियों में कभी-कभी कहते थे, ''बेटा! फटा हुआ सिल कर पहन लेना, पर किसी से कभी माँगना नहीं।'' डॉ. रामप्रकाश पाण्डे जी को एक दिन एक आदमी ब्लेड की डिब्बी दे गया। उन्होंने वह ब्लेड माताजी को दे दिये। इसपर गुरुजी बहुत प्रसन्न हुए। वह बहुत बार उस प्रसंग की चर्चा करते और कहते, ''बेटा, कोई आदमी कोई चीज दे जाये तो माताजी के पास दे देना। उसे अपने लिये इस्तेमाल मत करना। नहीं तो तुम पर उस का भार चढ़ जायेगा।'' ❀

अपने निजी खर्च के संबंध में वे कितने अनुशासित थे, इस विषय में एक दिन श्रीकृष्ण अग्रवाल जी ने बताया। ''यह उन दिनों की बात है जब आश्रमवासियों की आवश्यकता हेतु त्रिपदा- 15 में, कुछ आवश्यक सामान रखने हेतु छोटी सी दुकान बनाई गई थी और मुझे इस काम के लिये नियुक्त कर दिया गया था।

दीपावली का दिन था। दुकान में पटाखे भी आये हुए थे। तब चीनू (श्री चिन्मय पंण्ड्या का घरेलू नाम) बहुत छोटा था। गुरुजी उसे गोदी में लिये हुए दुकान पर आये और बोले- ''बेटा! चीनू के लायक पटाखे निकाल दो।'' ''जो चाहिए, ले लीजिए गुरुजी।'' मैंने कुछ पटाखे सामने रखते हुए कहा।

गुरुजी ने कुछ पटाखे बच्चे के हिसाब से छाँटे और कहा-''इसे बाँध दो और कितना पैसा हुआ, बताओ?''

मैं हैरान होकर, गुरुजी की ओर देखने लगा। सोचा, दुकान तो गुरुजी की ही है। फिर भी इतने थोड़े से पटाखों के पैसे पूछ रहे हैं। मैंने झट से कहा- ''गुरुजी, दुकान आप ही की है, इसके पैसे नहीं लगेंगे।''

यह सुनकर गुरुजी नाराजगी भरे स्वर में, पर समझाते हुए बोले-''देख बेटा! फिर ऐसी बात मत कहना। दुकान मिशन की है। मैं पैसे दिए बिना नहीं लूँगा। तू चाहे तो इन्हें रख ले।''

अब तो मेरी बोलती बंद हो गई। बच्चे के पटाखे, कैसे रख लेता? मैंने तुरंत हिसाब जोड़ कर पैसे बताये, ''दो रुपये, नौ आने।'' पैसे देकर ही गुरुजी पटाखे लेकर गये। ❀

गुरुजी-माताजी ने अपने बच्चों से भी संयमशीलता की साधना कराई। इस विषय में एक प्रसंग मैंने वाङ्मय-खण्ड 1 में पढ़ा था। पढ़कर मेरा मन भर आया। प्रसंग इस प्रकार है- ''शैल जीजी तब लगभग 6-7 साल की थीं। एक दिन स्कूल से लौटते समय उन्हें रास्ते में एक रुपया पड़ा मिला। उन्होंने उसे उठा लिया। सामने खिलौने की दुकान थी। उनका बालमन खिलौनों के लिये मचल गया। मन ने कहा पड़े हुए सिक्के को उठा लेना कोई चोरी तो है नहीं। सो उन्होंने खिलौने की दुकान से गुब्बारे, खिलौने आदि खरीदे और बड़ी प्रसन्न मुद्रा में घर पहुँचीं।

घर पहुँचते ही माताजी की पहली नजर उनके नन्हें-नन्हें हाथों में थमे खिलौनों और गुब्बारों पर पड़ी। माताजी के पूछने पर उन्होंने सब बता दिया। माताजी ने प्यार से उन्हें समझाते हुए कहा, ''देखो बेटी, इन सब चीजों को दुकान पर वापिस कर आओ और पैसे को किसी मंदिर में डाल दो।'' ''आखिर क्यों?'' 6-7 साल की नन्हीं बच्ची के मन ने प्रश्न किया। मैंने तो कोई चोरी नहीं की, पैसे तो पड़े मिले थे।'' ''पड़े मिले तो क्या हुआ, बिना मेहनत का पैसा भी चोरी का ही है।'' माताजी ने समझाया और खिलौने लौटा दिये गये। पैसा पास के मंदिर में चढ़ा दिया गया।'' कुछ समय पहले खेलने के लिये मचल रहा मन आदर्श के आगे झुक गया। ❀

श्री चैतन्य जी व उस समय के अन्य परिजन डॉ दत्ता, लीलापत शर्मा जी आदि बताते हैं कि जब पूज्य गुरुदेव के बड़े बेटे, श्री ओमप्रकाश शर्मा जी, गुड़गाँव में अपना मकान बना रहे थे। उन्हें कुछ पैसों की आवश्यकता थी। यह बात मथुरा में तपोभूमि के कार्यकर्ताओं को पता चली। उधार में पैसे की व्यवस्था कर देना कोई बड़ी बात नहीं थी। किन्तु पूज्यवर से कहे कौन? किसी की हिम्मत नहीं पड़ रही थी।

उनकी परेशानी देखकर, एक कार्यकर्ता से रहा नहीं गया, सो एक दिन उसने हिम्मत बटोर कर गुरुजी से कह ही दिया, ''गुरुदेव, ओमप्रकाश भाई साहब को पैसे की आवश्यकता है। उधार में कुछ पैसे की व्यवस्था कर देते तो अच्छा होता।''

सुनकर, गुरुजी नाराज हो कर बोले, ''आप लोगों ने मुझे समझ क्या रक्खा है? मिशन का पैसा, बेटे को मकान बनाने के लिये दे दूँ? क्या मुझे चोर समझ रक्खा है? बेईमान-उचक्का समझ रक्खा है?''

अब तो कहने वाले भाई की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई थी। फिर भी सफाई के तौर पर धीरे से बोले, ''गुरुजी, हमने तो उधार की बात कही थी।'' परन्तु वे कहाँ सुनने वाले थे। इस पर और भी नाराज हुए और बोले, ''घर उसे बनवाना है, तो उधार की व्यवस्था भी स्वयं करे। हम मिशन के पैसे को अपने बेटों के लिये छू भी नहीं सकते।'' ❀

इसी प्रकार जब डॉ. प्रणव जी का ऐक्सीडेंट हुआ था। उस समय भी गुरुजी ने मिशन के पैसे को उनके इलाज के लिये उधार रूप में भी ग्रहण नहीं

किया। जब सतीश भाई साहब मथुरा से पैसे लेकर आये तब उन्हें दिल्ली ले जाया गया। श्री वीरेश्वर उपाध्याय जी उन्हें दिल्ली लेकर गये थे। ❁

श्री सतीश भाई साहब (गुरुदेव के सुपुत्र) की शादी के समय का एक प्रसंग जिसकी वीरेश्वर भाई साहब अक्सर चर्चा करते हैं, वह भी बताती हूँ-

सतीश भाई साहब की शादी का उत्सव प्रारंभ हो चुका था। सब मेहमान घीयामंडी, मथुरा पहुँच चुके थे। फिर भी पूज्यवर के सभी कार्यक्रम पहले की तरह ही नियमित रुप से चल रहे थे। कहीं कोई सजावट या परिवर्तन नहीं था।

शिविरार्थी तो पूज्यवर के आदर्श पर निढाल थे, किन्तु रिश्तेदारों को सजावट के कुछ भी चिह्न दिखाई न देने से खल रहा था। पर गुरुदेव से कहे कौन? गुरुजी से कहने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ रही थी? सभी आपस में काना-फूसी कर रहे थे।

आखिर में श्री सत्यप्रकाश जी, सतीश भाई साहब की मौसी के लड़के, जिन्हें घर में सब ''सत्तो'' कहकर पुकारते थे। उन्होंने जाकर गुरुजी से अपनी ब्रज भाषा में कह ही दिया। ''क्या मौसा जी? कुछ अच्छो ना लागत है। लड़को को ब्याह है, कुछ झालर-वालर तो होना ही चाहिए।''

गुरुदेव ने उनकी बात सुनी व कहा- ''अच्छा देखता हूँ।''

मैं वहीं खड़ा था। मुझे इशारे से बुलाया व कहा- ''देख वीरेश्वर! सत्तो क्या कह रहा है? जा एकाध झालर लगवा दे।''

मैंने सत्यप्रकाश जी से चर्चा की व दुकान में आर्डर दे आया। उनके स्तर के अनुरूप कम से कम पचास रुपये का झालर तो लगना ही चाहिए, ऐसा सोचकर, आर्डर दे आया।

दूसरे दिन प्रात: पूज्यवर ने पूछा, ''वीरेश्वर, झालर के लिये कहा क्या?'' ''हाँ, गुरुजी।''

''कितने का?''

''जी, पचास रुपये का''

सुनकर गुरुजी बोले, ''जा, जा! मनाकर दे। मुझे नहीं लगाना पचास रुपये का झालर।'' मैं चौंक कर गुरुदेव का मुँह ताकने लगा सोचा, कल आर्डर दिया, आज कैसे मना करूँ? क्या सचमुच मना करना पड़ेगा? अभी सोच ही रहा था कि इतने में उन्होंने फिर कहा-''जा, जल्दी मना कर दे, नहीं तो वह लगा जायगा।''

अब तो कोई चारा नहीं था। साइकिल उठाकर मना करने हेतु चल पड़ा। दुकानदार नौकर को झालर देकर रवाना ही कर रहा था। नौकर वहीं कुछ आवश्यक सामान निकाल रहा था।

मैंने जाते ही कहा–''आचार्य जी ने कल का आर्डर कैन्सिल कर दिया है, अत: न भिजवायें।'' दुकानदार ने पहले तो एक टक देखा, फिर नौकर से कहा–''बस रहने दो, वहाँ का आर्डर कैन्सिल है।''

''आज तो बच गये।'' सोचते हुए व इससे पहले कि दुकानदार कुछ भला-बुरा कहे, मैं दुकान से खिसक लिया।

उन्हें फिजूलखर्ची तो बिल्कुल भी पसंद नहीं थी। उन्हें पुत्र के विवाह पर जरा सी रोशनी करना भी अनावश्यक सजावट लगता था।

ऐसे निस्पृह महापुरुष ही अपने लिये कठोरता अपनाकर किसी बृहद् मिशन का निर्माण करने में सक्षम हो पाते हैं। ❀

गुरुजी-माताजी चाहते थे कि हम कार्यकर्ताओं के जीवन में भी सादगी दिखाई देनी चाहिये।

एक बार सर्दियों में, मैं अपने घर, आगरा गई हुई थी। कड़ाके की ठण्ड थी। लौटते समय रास्ते में ठण्ड न लगे इसलिये मैंने कोट पहन लिया। कोट जरा कीमती था। रात में 8:30-9:00 बजे के लगभग मैं शान्तिकुञ्ज पहुँची। पहुँचते ही गुरुजी के पास प्रणाम करने के लिये गई। जैसे ही गुरुजी को प्रणाम किया उन्होंने बड़े ध्यान से देखा और बोले, ''अच्छा! कोट पहन कर आई है। कोट कहाँ से माँग लाई?'' मैंने कहा, ''गुरुजी, मेरा ही कोट है। किसी से, कहाँ से माँगती?'' इस पर गुरुजी बोले, ''अच्छा बेटा, माँगना नहीं किसी से। अब पहन आई है तो कोई बात नहीं, पर बेटा, यहाँ हम सबको ब्राह्मण जीवन जीने की बात कहते हैं। सादगी से रहने की बात कहते हैं। तू इसका ध्यान रखना।'' उस दिन के बाद से मैं गुरुजी के सामने वह कोट पहन कर नहीं गई। ❀

एक बार करवाचौथ के त्यौहार के दिन मैंने और शैलो जीजी ने बढ़िया से गहने आदि पहने और गुरुजी-माताजी को प्रणाम करने व उनका पूजन करने गए। पिताजी (गुरुजी) ने हमें बड़े गौर से देखा। फिर माताजी से बोले, ''माताजी, ये तो हमारी बेटियाँ नहीं लगतीं।''

उनकी दृष्टि में कुछ ऐसे भाव थे कि हम लोग उनसे नज़र नहीं मिला पाये, पर हम उनका भाव समझ गये थे। हम दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा, जैसे-तैसे फटाफट पूजा की और दौड़ कर नीचे आ गये। दोनों ने परस्पर कोई चर्चा नहीं की, अपने-अपने कमरे में गये और सब गहने आदि उतार कर रख दिये। फिर कभी दुबारा हम लोगों ने उस दिन जैसे गहने नहीं पहने। गुरुजी को बहनों का जरूरत से ज़्यादा सजना-धजना पसंद नहीं था। वे कहते थे, ''बेटा, सादगी में ही असली सौंदर्य है।'' ❀

ब्राह्मणोचित जीवन (सादगी भरा जीवन) जीने की प्रेरणा देते हुए वे अक्सर समझाते, ''बेटा, ये हमारी ओढ़ी हुई गरीबी है। लोकसेवी को कम से कम सुविधा साधन बटोरने चाहिये।''

वे छोटी-छोटी बातों द्वारा ही महत्त्वपूर्ण शिक्षण दे दिया करते थे। एक दिन गुरुजी के पास एक सज्जन आये। एक बालक उनके लिये पानी लेकर आया। गुरुजी ने उन सज्जन के जाने के बाद उस बालक को व अन्य जो लोग बैठे थे सबको समझाया, ''जब भी किसी को पानी दो, तो गिलास को ढँकना चाहिये और नीचे भी एक तश्तरी रखनी चाहिये। यदि एक हाथ से गिलास पकड़ा है, तो दूसरा हाथ नीचे लगाओ। थोड़ा झुक कर और दोनों हाथ से पानी देना चाहिये। गिलास के नीचे तश्तरी रखना विनम्रता का प्रतीक है, और गिलास को ढँकना निरहंकारिता का।''

प्रारंभ के दिनों में बिजली नहीं थी। हम लोग भी लालटेन जला कर काम करते थे। एक दिन गुरुजी ने समझाया, ''लालटेन की बत्ती ठीक कर लेनी चाहिये। बत्ती को ऊपर से छोटी कैंची से काट लेना चाहिये। इससे रोशनी तेज हो जाती है और तेल भी कम खर्च होता है।''

करुणा के सागर - सामर्थ्य के पुंज

दूसरों के कष्ट से उन्हें ऐसी पीड़ा अनुभव होती थी जैसे वे स्वयं ही कष्ट भोग रहे हों। हमने उन्हें दूसरों के कष्ट में रोते भी देखा। तब एक पल को तो हम स्तब्ध रह गये, इतनी करुणा! वे श्रीरामकृष्ण परमहंस की ही भांति शिष्यों के कष्टों को अपने ऊपर ले लेते थे और उन्हें कष्ट से मुक्ति दिलाते थे।

तुलसीपुर, के गोयल जी बड़े ही समर्पित कार्यकर्ता एवं शान्तिकुञ्ज के ट्रस्टी रहे हैं। उनकी बेटी, विजय गोयल का बहुत जबरदस्त ऐक्सीडेंट हुआ था। हालत बहुत गंभीर थी। पूरा जबड़ा इस तरह से टूट गया था कि चेहरा पहचानना भी मुश्किल हो रहा था। गोयल जी ने तुरंत शान्तिकुञ्ज गुरुजी के पास टैलीग्राम किया। बेटी की हालत गंभीर होती गई। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया तो गोयल जी तुरंत रात में 8:00 बजे ही पत्नी सहित शान्तिकुञ्ज के लिये चल दिये। सुबह जब वे गुरुजी से मिलने पहुंचे तब गुरुजी हम कुछ कार्यकर्ताओं से बातचीत कर रहे थे और टैलीग्राम देखकर बोले कि गोयल जी की बेटी में अब कुछ रहा नहीं है।

इतने में दोनों पति-पत्नी गुरुजी के पास पहुंचे और बिलख-बिलख कर रोने लगे, ''गुरुजी, कैसे भी हो, हमारी बेटी को बचा लीजिये।'' दोनों की हालत देख कर गुरुजी के नयन भी भर आये। उनकी आँखों से अश्रु बहने लगे। फिर बोले, ''अच्छा बेटा! मैं प्रार्थना करूँगा, तू लौट जा।'' अगले दिन जब हम प्रणाम करने पहुँचे तो देखा गुरुजी का चेहरा बिलकुल नीला दिखाई दे रहा है, जैसे बहुत गहरी कोई चोट आई हो। मैंने पूछा, तो बोले, ''कुछ नहीं, कुछ नहीं, तुझे ऐसे ही दिख रहा है, कोई भ्रम हो रहा है।'' अगले दिन उनका चेहरा सामान्य हो गया। उधर गोयल जी की बेटी की हालत में आश्चर्यजनक सुधार हो गया था। गुरुजी ने अपने शिष्य का कष्ट स्वयं पर लेकर उसे संरक्षण दिया था। ❀

एक और घटना है। उन दिनों हम पूर्ण रूप से शान्तिकुञ्ज नहीं आये थे। भिलाई में ही रहते थे। हमारे साथ भिलाई की एक कार्यकर्ता कामिनी बहन हमारे साथ आई थीं। उनके विवाह को कई वर्ष हो गए थे, पर संतान नहीं थी। इस कारण परिवार के लोग उन्हें परेशान करते थे। यहां तक कि पति भी अब दूसरा विवाह कर लेने की बात कहने लगे थे। मिशन का काम करने पर भी पति उन्हें ताने देते और कहते कि हम तुम्हें छोड़ देंगे। तब तुम आराम से अपने गुरू का काम करना।

गुरुजी के पास जाकर उन्होंने अपनी व्यथा सुनाई और फूट-फूट कर रोने लगीं। उनकी व्यथा सुनकर गुरुजी की आँखों से भी अश्रुधारा बहने लगी। जितना वह रो रही थीं, उतना ही गुरुजी भी रो रहे थे। हम सब देखकर हतप्रभ

थे। गुरुजी की हालत देखकर हम कामिनी बहन से धीरज रखने को कहकर उन्हें शांत हो जाने के लिये कहने लगे। फिर थोड़ी देर में गुरुजी बोले, ''जा बेटी, अब तुझे कोई तंग नहीं करेगा। तू बस मेरा काम करती रहना।''

जल्दी ही हम लोग स्थाई रूप से शान्तिकुञ्ज आ गये। कामिनी बहन को शान्तिकुञ्ज से लौटने के नौ माह बाद ही एक सुंदर बालक की प्राप्ति हुई। कुछ वर्षों बाद वे बालक को गुरुजी का आशीर्वाद दिलाने के लिये शान्तिकुञ्ज लेकर आईं। जब हमने बालक के विषय में पूछा तो अश्रुपूरित नेत्रों से कहने लगीं, ''आप भूल गए, जब मैं रोते हुए गुरुजी के पास आई थी ? उन्होंने ही मेरी झोली खुशियों से भर दी है।'' ❁

श्री केसरी कपिल जी एवं श्रीमती देवकुमारी श्रीवास्तव

(श्री केसरी कपिलजी 1969 में टाटानगर में पूज्य गुरुदेव के सम्पर्क में आये। उसके बाद लगातार संपर्क में रहे, क्षेत्र से ही समयदान करते रहे, गुरुदेव के साथ भी टोलियों में जाने का सौभाग्य मिला। जून 1977 में पूज्य गुरुदेव के बुलाने पर सपरिवार स्थाई रूप से शान्तिकुञ्ज आ गये।)

काल को भी मुट्ठी में रखने वाले महाकाल हमारे गुरुदेव

सन् 1969 में पूज्य गुरुदेव हमारे यहाँ टाटानगर आये थे। उनका कार्यक्रम था। उसी कार्यक्रम में 10 अप्रैल को हमने गुरुदीक्षा ली। उन दिनों गुरुदेव पुष्पाँजलि अपने हाथ में लिया करते थे। जब दीक्षा की पुष्पाँजलि देने गुरुदेव के पास गई तो उन्होंने कहा, ''बेटा, परिवार और सामान न बढ़ाना।'' मैंने कहा, ''गुरुदेव, कल ही तो आपने पुंसवन संस्कार कराया है'' तो बोले, ''बेटा यह संतान तुम्हारा भविष्य बदलने आ रही है। तुम्हारी यह संतान बहुत सौभाग्यशाली होगी, पर आगे परिवार और सामान मत बढ़ाना।'' मैं सोचने लगी परिवार की बात तो समझ में आई, पर सामान की बात समझ में नहीं आई। बात आई गई हो गई।

कहते हैं कि समर्थ गुरु शिष्य को कुछ देने से पहले कठिन परीक्षा लेता है सो हमारी भी परीक्षा शुरू हुई। 26 अप्रैल को मेरा छोटा पुत्र शशि शेखर

जो उस समय तीन वर्ष का था, सख़्त बीमार हो गया। एक माह होने को आया पर उसके स्वास्थ्य में कोई सुधार नहीं हो रहा था, बल्कि स्थिति और भी नाज़ुक होती जा रही थी। पूरी पारिवारिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई थी। विचित्र स्थिति थी। बालक हर समय बेहोश रहता था। डाक्टर, हमारे पतिदेव के आगमन की प्रतीक्षा करते रहते थे। क्योंकि वे बालक के सिर पर हाथ रखकर जब गायत्री मंत्र बोलते तो वह आँखें खोल देता। जिसे देखकर डाक्टर दवा लिखते थे।

25 मई को उसकी स्थिति ज़्यादा खराब हो गई। जब उसका कष्ट असह्य हो गया तो पतिदेव (श्री कपिल जी) ने मेरे आग्रह पर गुरुदेव को पत्र लिखा कि बालक का कष्ट देखा नहीं जाता। यदि बचा सकें तो ठीक, नहीं तो उसे दुनिया से उठा भी लें तो दुःख नहीं। उसे कष्ट से तो मुक्ति मिले।

गुरुदेव तक पत्र पहुँचने में कम से कम 5 दिन तो लगते ही थे। पर आश्चर्य! 29 मई को ही गुरुदेव का जवाबी पत्र पहुँच गया। पत्र 25 मई को लिखा गया था। ऐसा लगा जैसे यहाँ हम पत्र लिख रहे थे और वहाँ वह जवाब लिख रहे थे। लिखा था- ''तुमने भले न बताया हो पर तुम्हारे बालक की अस्वस्थता की जानकारी हमें है। घबराना नहीं, बालक शीघ्र घर जाएगा और पूर्ण रूप से स्वस्थ होगा।'' पत्र मिलने के चौथे दिन ही 2 जून को बालक को अस्पताल से छुट्टी मिल गई और उसके स्वास्थ्य में क्रमशः सुधार भी होता गया। ❁

जून 1969 में मथुरा में नौ दिवसीय गायत्री अनुष्ठान सत्र पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में चल रहे थे। मेरे पतिदेव को भी जाना था। मेरे प्रसव का समय नज़दीक था। तीनों बच्चे भी छोटे ही थे। पतिदेव की अनुपस्थिति में सब व्यवस्था कैसे होगी? मुझे यह चिंता सताये जा रही थी। एक रात हम दोनों ने स्वप्न में देखा कि एक श्वेताम्बर महिला हमारे आँगन का चक्कर काटकर मेरे कमरे में आकर कहने लगी, तू क्यों चिंता करती है? मैं तो तेरे पास आ गई हूँ। तुम्हारी देखभाल मैं करूँगी। उसी दिन शाम को मेरी ननद हमारे घर आ गई और मेरे पतिदेव मेरी जिम्मेदारी उन्हें सौंपकर मथुरा के लिये तैयार हो गये। पतिदेव से, जाते समय मैंने निवेदन किया कि आपकी उपस्थिति में ही प्रसव होता तो मैं निश्चिंत रहती। कृपया पूज्य गुरुदेव को मेरा यह संदेश दे दीजियेगा।

श्री कपिल जी ने तपोभूमि मथुरा में पहुँच कर जब गुरुजी से सब बात बताई तो गुरुजी ने कहा कि घर की चिंता अब तुम्हारी नहीं। वहाँ की देख-रेख हम कर लेंगे। तुम यहाँ अनुष्ठान करो और यदि तुम्हारी पत्नी की इच्छा है कि प्रसव तुम्हारी उपस्थिति में ही हो तो मैं उसका प्रसव काल एक महीने आगे बढ़ा देता हूँ।

इधर हमारे आश्चर्य और प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था। 12 दिन मेरे पतिदेव हमसे दूर रहे किन्तु प्रत्येक दिन गुरुदेव और वंदनीया माताजी मुझे हर पल अपनी उपस्थिति का आभास कराते रहे। कभी-कभी तो गुरुजी का कुर्ता स्पष्ट दिखाई देता। गुरुजी के पूरे दर्शन तो नहीं हुए पर उनका बराबर अहसास होता रहा। माताजी तो घर में घूमते हुए व बच्चों के बिस्तर पर लेटी हुई अक्सर ही दिखाई देतीं। उन्हें बच्चों के बिस्तर पर देखकर मुझे लगता कि बच्चे बिस्तर गंदा कर देते हैं, कभी-कभी गीला भी कर देते हैं। फिर भी माताजी उस पर आनंद से लेट जाती हैं।

इस प्रकार कैसे इनके शिविर के दिन पूरे हो गये पता ही नहीं चला। यह मथुरा से लौट आये। हमारी छोटी बेटी करुणा का जन्म भी दसवें महीने में इनके लौटने पर ही हुआ और सच में यहीं से मेरे भाग्य का बदलाव भी प्रारंभ हो गया।

इन्हें, मैंने तेरी अमानत मानकर रखा था।

गुरुदेव साधना हेतु हिमालय जाने वाले थे। 16 से 20 जून 1971 की तिथियों में मथुरा में विदाई समारोह होने वाला था। टाटानगर के गायत्री परिजन उन दिनों गीत गाते थे -

कुछ चंद महीनों का, समय बाकी बचा है,
गुरुदेव चले जायेंगे, यह शोर मचा है।

अखण्ड ज्योति पत्रिका में अपनों से अपनी बात शीर्षक के अंतर्गत गुरुदेव इसी आशय के लेख भी लिख रहे थे। पूज्य गुरुदेव के अंतिम दर्शन करने की इच्छा हर किसी को झकझोर रही थी। कोई भी पीछे नहीं रहना चाहता था। सन् 1971 के विदाई समारोह में हम भी सपरिवार आये थे। हम दोनों यज्ञनगर एवं यज्ञशाला की जवाबदारी सँभाल रहे थे। इस समारोह में गुरुदेव के प्रवचन, यज्ञ के बाद ही होते थे। तीसरे दिन के प्रवचन में गुरुदेव का बड़ा

मार्मिक उद्‌बोधन था। उन्होंने अपनी अनुपस्थिति में परिजनों को अपना समय, श्रम, साधन लगाकर मिशन को सम्भालने और बढ़ाने का भावभरा आवाहन किया। शायद ही कोई ऐसा होगा, जिसका हृदय विगलित न हुआ हो। बहुत लोगों ने अपने आभूषण उतार कर दान किये। मुझे आभूषण पहनना बहुत प्रिय था। 7-8 तोले के आभूषण मैंने उस समय भी पहन रखे थे। मुझे भी उत्साह आया और हम दोनों ने परामर्शपूर्वक सब आभूषण एक रुमाल में बाँधकर गुरुजी व माताजी के चरणों में रखकर प्रणाम कर लिया।

20 जून को गुरुजी-माताजी अखण्ड दीपक लेकर शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार आ गये। सब जानते हैं कि वे मथुरा से कुछ भी साथ नहीं लाये थे। उसके बाद सन् 76 तक मैं अनेकों बार शान्तिकुञ्ज आई। सन् 77 के जून माह में गुरुपूर्णिमा पर्व पर, शिविर में भाग लेने के लिये मैं बच्चों सहित आई थी। गुरुदेव ने हम दोनों को दोपहर में मिलने के लिये बुलाया और बोले, ''अब यहाँ ही रहना।'' इन्होंने कहा, ''गुरुजी, 6 महीने तो देता ही हूँ, 2 माह और बढ़ा दूँगा।'' गुरुजी बोले, ''मुझे 365 दिन चाहिये।'' हमने कहा, ''गुरुदेव, बच्चे छोटे हैं, उनकी पढ़ाई लिखाई की जिम्मेदारी है। बड़ा परिवार है। छोटा बेटा बीमार रहता है।'' गुरुदेव बोले, ''बेटा, तू मेरे पास आ जाएगी तो मैं सब देख लूँगा।'' हम लोग यहीं रुक गये।

11 जुलाई को माताजी ने दोपहर में बुलाया और एक छोटी सी पोटली मुझे दी। मैंने खोल कर देखा 6 साल पहले समर्पित किये मेरे आभूषण थे। मैंने कहा, ''माताजी यह तो मैंने दान कर दिये थे। इन्हें मैं नहीं लूँगी।'' माताजी ने कहा, ''बेटा, मैं जानती थी कि भविष्य में तुझे मेरे पास आना है। इसलिये मैंने इन्हें तेरी अमानत मानकर रखा था।'' फिर बोलीं, ''तेरी गृहस्थी कच्ची है। अभी ये तेरे काम की है, इसे रख ले। बच्चों के समय काम आयेंगे।'' मेरे लाख मना करने पर भी माताजी ने वह आभूषण मुझे थमा दिये। मैंने उन्हें सँभाल कर तो रख लिया पर, कभी पहना नहीं। जब बच्चों का विवाह हुआ तब वही माताजी से प्राप्त आशीर्वाद की पोटली मेरे काम आई। मेरे दोनों बेटों और दोनों बेटियों का विवाह मैंने उन्हीं आभूषणों से किया। पर मेरे लिये आज भी यह रहस्य और आश्चर्य ही बना है कि माताजी ने हजारों की भीड़ और हजारों आभूषणों में से भी मेरे आभूषण कैसे पहचाने और कहाँ सँभाल कर रखे थे?

जितने आभूषण दिये थे उतने ही थे, न एक कम न ज़्यादा। सच में हमारे पूज्य गुरुदेव और वंदनीया माताजी त्रिकालदर्शी और सर्वज्ञ थे।

श्री कपिल जी भाई साहब बताते हैं, ''मुझे गुरुदेव के साथ क्षेत्रों में जाने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके साथ बिताई ढेरों स्मृतियाँ हैं। पंडित लीलापत शर्मा जी भी अक्सर साथ में रहते थे। उन्होंने इस पर 'पूज्य गुरुदेव के मार्मिक संस्मरण' नामक पुस्तक भी लिखी है। बहुत से प्रसंग उसमें छप चुके हैं, और भी ढेरों प्रसंग हैं।''

आपका सुतीक्ष्ण आपकी प्रतीक्षा में है

मई, सन् 1977 में मैं, पंचकुण्डीय गायत्री महायज्ञ आयोजन सम्पन्न कराने हेतु गुजरात दौरे पर था। मेरे साथ आँकला, जिला खेड़ा के डॉ. गोविन्द भाई पटेल भी थे।

नर्मदा नदी पार बड़ौदा जिले के एक गाँव में पंचकुण्डीय यज्ञ के संयोजक, एक संत थे। बड़ी श्रद्धा से उन्होंने तीनों दिन के कार्यक्रम सम्पन्न कराये। यज्ञ की पूर्णता के पश्चात् जब हम लोग चलने लगे, तब उन्होंने मुझसे कहा–''कृपया आप गुरुदेव से कहें कि आपका सुतीक्ष्ण, आपकी प्रतीक्षा में है। अब मुझे इस धरती से उठा लेना व अपने पास बुला लेना।'' हमने शान्तिकुञ्ज आकर गुरुदेव से कह दिया। बात आई-गई हो गई। पुन: जब गुरुदेव सन् 1980 में गायत्री शक्तिपीठों की प्राण प्रतिष्ठा के प्रथम दौरे पर गुजरात गये, तब शामलाजी से छिपड़ी होते हुए बड़ौदा पहुँचे। हमने गुरुजी को याद दिलाया कि यहीं पर निकट में एक संत आपकी प्रतीक्षा में थे। गुरुदेव ने उनके लिए एक कार्यकर्ता के हाथ, कुछ फूल भेज दिये।

सुबह जब हम लोग बड़ौदा से निकल रहे थे, उसी समय सूचना मिली कि उक्त संत ने शरीर त्याग दिया है। तब पूज्य गुरुदेव ने पुन: उनके लिये अंतिम पुष्पांजलि स्वरूप पुष्प दिये व एक कार्यकर्ता को भेजा। इस प्रकार उन्होंने अपने सुतीक्ष्ण का सम्मान किया।

प्रेत योनि से मुक्ति दिलाई

4 नवंबर 1981 की बात है। पूज्य गुरुदेव शक्तिपीठों के दौरे पर थे। हम गुरुदेव के साथ थे। महुआ, जिला भावनगर, गुजरात में हम लोग श्री छबील भाई मेहता के घर ठहरे थे। उस घर में भूतों का कब्जा था। शायद इसीलिये

छबीलभाई स्वयं उस घर में नहीं रहते थे। हमें यह बात मालूम नहीं थी। रात में सब काम समाप्त करते-करते मुझे 1:00 बज गया। 1:10 पर जब मैं सोया तो प्रेत परेशान करने लगे। कुछ देर तक तो मैं उनसे जूझता रहा पर फिर मुझे लगा कि पूज्य गुरुदेव से कहना चाहिये। गुरुजी तब तक सो चुके थे। मैं उनके कमरे मे गया, धीरे से गुरुदेव के पैर का अँगूठा पकड़ा। गुरुजी, तुरंत उठ बैठे, जैसे वह मेरा इंतजार ही कर रहे हों। बोले, ''क्या है बेटा?'' मैंने कहा, ''पिताजी, प्रेत परेशान कर रहे हैं।'' गुरुदेव बोले, ''अच्छा बेटा, चल! मैं देखता हूँ।'' गुरुदेव हॉल में आये। मेरे बिस्तर पर लगभग 5 मिनट बैठे, ध्यान किया, फिर बोले, ''अब सो जा बेटा, उनकी मुक्ति हो गई।'' मुझे लेटते ही नींद आ गई। फिर किसी ने मुझे परेशान नहीं किया।

गुरुजी सदा प्रोत्साहन देकर परिजनों का उत्साह बढ़ाते रहते थे।

लोहरदगा बिहार के एक सौ आठ कुण्डीय यज्ञ की बात है। इस प्रसंग को इंदिरा बहन भी सुनाती हैं। गुरुदेव के आने से पूर्व तक कार्यक्रम श्री शिव प्रसाद मिश्रा जी ही सँभालते थे।

उस दिन पूज्य गुरुदेव को जरा देर से यज्ञ स्थल आना था। अतः श्री मिश्रा जी कर्मकाण्ड सम्पन्न कराते हुए बार-बार, मुड़-मुड़कर देख रहे थे। पूज्यवर नियत समय पर पहुँच गये और मिश्रा जी के पीछे जाकर खड़े हो गये। उन्होंने सबको इशारा कर दिया कि वे न बतायें अन्यथा उन्हें डिस्टर्ब होगा। किसी ने नहीं बताया कि गुरुजी आ गये हैं। पर मिश्रा जी का मन नहीं मान रहा था। इतना लेट गुरुजी हो नहीं सकते, अभी तक मुझे सूचना कैसे नहीं मिली, एकाएक, वे पूरा पीछे घूम गये। देखा, तो गुरुदेव पीछे खड़े, मंद-मंद मुस्कुरा रहे थे। अब तो वे खुशी से उछल पड़े। ''पूज्य गुरुदेव की जय'' गगन भेदी नारों से पूरा पंडाल जय घोष करने लगा।

''देखा, मैंने कहा था न, डिस्टर्ब होगा।'' कहते हुए पूज्यवर ने मंच संभाल लिया। अपने शिष्यों को आगे बढ़ाने हेतु वे भरपूर अवसर देते थे। देर से जाते व चुप बैठ जाते ताकि उनके मन में गुरुदेव के आने से संकोच न हो।

शान्तिकुञ्ज में भी गुरुजी ने देवकन्या सत्र, महिला सत्र, प्राणप्रत्यावर्तन सत्र, कल्प साधना सत्र, चांद्रायण व्रत इत्यादि बहुत सारे सत्र, साधनाएँ व

प्रशिक्षण सत्र कराये। उन सबके माध्यम से हम सब लोगों को तैयार किया और फिर स्वयं तो उन्होंने क्षेत्रों में जाना ही छोड़ दिया। हमीं लोगों को प्रचार-प्रसार के लिये यहाँ तक कि बड़े-बड़े कार्यक्रमों में भेजने लगे थे। शक्ति वे देते रहे काम हम लोग करते रहे। उनकी शक्ति का अहसास आज भी हम लोगों को बराबर होता है।

घास-फूस का प्रज्ञापीठ

शक्तिपीठों की प्राणप्रतिष्ठा के समय का एक प्रसंग है, महासमुन्द के वरिष्ठ कार्यकर्ता पं. ज्वालाप्रसाद दुबे ने एक घास-फूस की झोंपड़ी बना ली। उसमें गायत्री माता का चित्र रख दिया तथा कुछ पुस्तकें प्रचार हेतु रख दीं व मन में सोच लिया कि इसका गुरुदेव द्वारा उद्घाटन कराऊँगा।

चूंकि स्थान रास्ते में ही पड़ता था अत: एक कार्यकर्ता को गुरुदेव की गाड़ी रोकने हेतु खड़ा कर दिया व स्वयं कुछ तैयारी करने चले गये। कार्यकर्ता का ध्यान थोड़ा चूक गया और इतने में पूज्य गुरुदेव की गाड़ी आगे निकल गई। किन्तु तब तक ज्वाला प्रसाद जी ने आकर साथ जा रही दूसरी गाड़ी को रोक लिया। उन्हें वह स्थान दिखाया व समझाया कि गरीब जनता कहाँ से शक्तिपीठ हेतु खर्च कर पायेगी। अत: गाँव-गाँव में साहित्य प्रचार हेतु मैंने प्रज्ञापीठ बनाया है। गुरुजी को जरूर बताना। अवश्य बतायेंगे कहकर, दूसरी गाड़ी बिदा हुई। ज्वाला प्रसाद जी थोड़ा निराश हो गये। अब शायद ही गुरुदेव आ पायें। मन को जैसे-तैसे समझा लिया।

बात गुरुदेव के कानों तक पहुँची। गुरुदेव हँसे और बोले, ''ये ज्वाला भी कुछ न कुछ करता ही रहता है। अच्छा, उसे जरूर देखेंगे। लौटते में गाड़ी रोकना।''

निर्देश भला अमान्य कैसे होता? लौटते में वहाँ गाड़ी रोकी गई। गुरुदेव ने उसे देखा। खूब हँसे और कहा, ''ज्वाला, इसका भी उद्घाटन करूँ?''

ज्वाला प्रसाद जी ने चुपचाप सिर हिला दिया। दीपक जल उठे। गरीबों की भावना ने भगवान का दिल छू लिया था और उन्होंने भी उन्हें हृदय से अपना मान लिया। आज भी छत्तीसगढ़ प्रांत गुरुदेव का हृदय माना जाता है।

तूने तो मुझे बुक सेलर बना दिया

एक दिन एक परिजन गुरुजी के पास आये व बड़ी बहादुरी प्रदर्शित करते हुए बोले, ''गुरुजी मैंने 35-40 अखण्ड ज्योति पत्रिका के ग्राहक बना दिये हैं।''

उसकी बात सुनकर गुरुजी थोड़ा गंभीर हुए व कहा, ''बेटा, तूने तो मुझे बुक सेलर बना दिया। कभी देखा कि जिन्हें तूने ग्राहक बनाया है, वह पढ़ता है कि नहीं? उसके पास बैठ, उससे चर्चा कर, पता चल जायगा कि पढ़ता भी है कि नहीं।''

कार्यकर्ता ने जाना कि अभी तक साहित्य प्रचार की बात ही समझ में आई थी। पढ़ाने की नहीं। उसे लगा कि शायद पूरे पृष्ठ तो मैं ही नहीं पढ़ पाता, फिर दूसरे से क्या पूछूँ? और उसी क्षण उन्होंने पढ़ने व पढ़ाने की प्रतिज्ञा ली।

ऐसे थे पूज्यवर, अति उत्साह को क्रियात्मक ढंग से वास्तविकता की ओर मोड़कर सहज भाव से अपना बना लेते थे, और बाद में अतीव दुलार कर, इतना अनुदान देते कि व्यक्ति निहाल हो उनका ही होकर रह जाता था।

बेटा, तेरे दो आने खर्च हो गए

आगरा के पुराने सक्रिय कार्यकर्त्ता श्री पन्नालाल अस्थाना जी ने महापूर्णाहुति के कार्यक्रम में एक लाख रुपये से अधिक मूल्य का युग साहित्य जन-जन तक पहुँचाया था। एक दिन चर्चा के दौरान पंडित लीलापत शर्मा जी ने उनसे पूछा कि युग साहित्य के प्रसार के लिए इतना उत्साह आपमें कैसे पैदा हुआ? तो उन्होंने अपना संस्मरण बतलाया-

''बात सन् 60 के दशक की है, तब पूज्य गुरुदेव मथुरा में ही थे। सस्ता समय था। मैं गुरुदेव से मिलने मथुरा गया तो मैंने पूज्य गुरुदेव के लिए दो आने की एक अच्छी सी फूल माला खरीदी। प्रणाम करके वह उन्हें पहना दी। फिर बातें होने लगीं। पूज्य गुरुदेव ने अचानक पूछा-

''बेटा, यह माला तू कितने में लाया?'' मैंने बतलाया, ''दो आने में गुरुजी।'' इसपर गुरुजी बोले, ''बेटा, तेरे दो आने खर्च हो गए और यह माला मेरे किसी काम नहीं आई। यदि तू दो आने की मेरी एक छोटी-सी किताब ले जाता तो दसियों लोगों तक मेरे विचार पहुँचते। तेरे पैसे भी सार्थक होते, लोगों का भी भला होता और मुझे भी संतोष मिलता।''

श्री अस्थाना जी ने बतलाया कि पू. गुरुदेव द्वारा सहजता से व्यक्त किए गए यह उद्‌गार मेरे हृदय में गहराई से बैठ गए। मेरी समझ में आ गया कि अपने धन की सार्थकता, जन कल्याण और गुरु की प्रसन्नता, तीनों अर्जित करने के लिए युग साहित्य का प्रसार सबसे सुगम और उपयोगी माध्यम है। इसलिये मैंने ज्ञान-यज्ञ को गति देने के लिये साहित्य-विस्तार का ही लक्ष्य सामने रखा और गुरुकृपा से सफलता भी मिली।''

केवल उजाड़ना नहीं बसाना भी आना चाहिए

एक बार श्री संदीप कुमार जी और कुछ अन्य परिजन पटना में नवरात्रि अनुष्ठान कर रहे थे। जिस घर में वे अनुष्ठान कर रहे थे वहाँ भूत-प्रेतों का निवास था। एक कार्यकर्ता, श्री चन्द्रशेखर जी, के बेटे को भूत परेशान करने लगे। वे बेटे को लेकर शान्तिकुञ्ज आए व पूज्यवर को सब बात बताई। पूज्यवर ने बेटे से पूछा, ''भूत तुझसे क्या मांगते हैं?'' बेटे ने कहा, ''फूल माँगते हैं?'' गुरुजी ने एक फूल उठाकर दे दिया। उनके जाने के बाद हम लोगों से कहा, ''तुम लोग यज्ञ करते हो, जिससे भूतों का घर उजड़ जाता है। जब तुम्हें उनका घर उजाड़ना आता है तो घर बसाना भी आना चाहिए न।'' अर्थात् उनकी मुक्ति हेतु भी अनुष्ठान करें। फिर कहा, ''सभी भूतों को नई योनियाँ दे दी हैं।'' इस प्रकार हर समस्या का समाधान करना व साथ में शिक्षण देना भी उनका सहज स्वभाव था।

गायत्री माता को मारेगा क्या?

मिशन की लोकप्रियता व प्रतिष्ठा देखकर एक स्थान पर एक मंदिर के पुजारी ने गायत्री माता की मूर्ति भी मँगवा ली तथा गुरुदेव को उद्‌घाटन हेतु बुला लिया। गुरुवर सहज ही तैयार भी हो गये पर जब मंदिर में गये तो देखा, वहाँ पूर्व से ही राधा-कृष्ण, सीता-राम, लक्ष्मी-गणेश, शंकर भगवान, हनुमान जी की मूर्तियाँ विद्यमान हैं। उन्हें देखकर उन्होंने कहा, ''यहाँ इतनी मूर्तियाँ तो पहले से ही मौजूद हैं। गायत्री माता को मारेगा क्या?''

वहाँ उन्होंने गायत्री माता की प्राण प्रतिष्ठा नहीं की। संभवत: वह अंध श्रद्धा को बढ़ावा नहीं देना चाहते थे। उन्होंने समझ लिया कि यह श्रद्धालुओं को दुहने के लिये ही मूर्ति स्थापना कराना चाहता है।

युग सर्जक भला अपने बच्चों को अनास्था के गर्त में कैसे ढकेलते, अत: मूर्ति स्थापना नहीं की। ❁

श्री अशोक दाश एवं श्रीमती मणि दाश

(श्री अशोक दाश जी 1981 में राऊरकेला उड़ीसा में पूज्य गुरुदेव के सम्पर्क में आये, दीक्षा ली और 1984 में स्थाई रूप से परिवार सहित शान्तिकुञ्ज आ गये।)

जो भी मशीन पकड़ेगा, ठीक हो जाएगी

मुझे माताजी का बहुत प्यार-आशीर्वाद मिला। उनके साथ बिताया एक-एक क्षण मेरे लिये धरोहर है। अभी मैं शान्तिकुञ्ज में नया-नया ही आया था। पूज्य गुरुदेव उन दिनों सूक्ष्मीकरण साधना में थे। एक दिन मैं और डॉ. दत्ता जब माताजी को प्रणाम करने गये तो माताजी ने बताया लल्लू मेरा टेलीफोन (इंटरकॉम) खराब हो गया है, ठीक ही नहीं हो रहा। डॉ. दत्ता जी बोले, ''माताजी, यह ठीक कर देंगे।'' माताजी ने मुझसे पूछा, ''लल्लू, तू ठीक कर देगा? अच्छा! देख तो!'' मैंने मन में सोचा, ''मैं कैसे करूँगा?'' पर मैं टेलीफोन को ब्रह्मवर्चस ले आया, उलट-पलट कर देखा और खोलकर साफ कर दिया, वह ठीक हो गया। अगले दिन माताजी का फोन चालू हो गया। माताजी खूब खुश हुईं और बोलीं ''जा, आज से तू गुरुजी का और मेरा फोटो सामने रखकर जो भी मशीन पकड़ेगा, वो ठीक हो जाएगी।'' उनका वह आशीर्वाद खूब फला। मैं किसी मशीन को उलट-पलट कर देखता भर था कि वह ठीक हो जाती थी। उनके आशीर्वाद से मैंने कितनी मशीनें ठीक कीं, इसका मेरे पास कोई हिसाब नहीं। मुझे ऐसा ही लगता रहा कि माताजी ने स्वयं ही इसे ठीक कर दिया है।

मैं कोई राजेश खन्ना हूँ ?

प्रारंभ में ई.एम.डी. विभाग बहुत छोटा सा था। थोड़ा-बहुत गीतों की रिकार्डिंग आदि का काम होता था। साधन भी कम थे और टैक्नीक भी आज के जितनी विकसित नहीं थी। एक छोटा सा वीडियो रिकार्डर था, जिससे बड़े भाईयों ने गुरुजी का एक प्रवचन रिकार्ड किया था। बार-बार दिखाने के कारण वह खराब हो गया था। जब नया रिकार्डिंग सेट आया तो मैंने सोचा कि यदि गुरुजी उस प्रवचन को दुबारा बोल दें तो कितना अच्छा हो। मैं गुरुजी के पास गया और निवेदन किया कि गुरुजी आप की रिकार्डिंग करनी है। गुरुजी ने मना

कर दिया। मैं नीचे आ गया। इस प्रकार मैं, दो-तीन बार खाली हाथ लौट कर आया। मेरे बार-बार आग्रह करने पर एक दिन गुरुजी ने डाँट लगाई, बोले, ''मैं कोई राजेश खन्ना हूँ? देवानंद हूँ? जो तू मेरी रिकार्डिंग करेगा?'' अब उनसे दुबारा निवेदन करने का मेरा साहस नहीं था। फिर भी बार-बार मन में विचार आता कि गुरुजी की रिकार्डिंग तो अवश्य होनी चाहिये ताकि सबको और आने वाली पीढ़ियों को भी इस अमृत का पान कराया जा सके। सो एक दिन मैंने माताजी से कहा, ''माताजी, गुरुजी तो रिकार्डिंग के लिये मना करते हैं।'' माताजी बोलीं, ''ठीक है बेटा, वे मानेंगे तो नहीं पर मैं कोशिश करूँगी।''

अगले दिन जब मैं गया तो माताजी ने कहा, ''जा लल्लू, गुरुजी से मैंने कह दिया है।'' मैं ऊपर गया तो गुरुजी ने मेरा कैमरा आदि देखकर मुझे तीखी निगाहों से देखा, पर मैंने उनकी ओर नहीं देखा कि फिर डाँटेंगे और चुप-चाप रिकार्डिंग में लग गया। गुरुजी कैमरे की ओर एक-टक देखते रहे और कुछ-कुछ बोलते रहे। मैं चुप-चाप रिकार्डिंग करता रहा। लगभग आधा घण्टा रिकार्डिंग की। जब नीचे आया और वंदनीया माताजी को दिखाने लगा, तो देखा, कि उसमें तो कुछ भी रिकार्ड नहीं हुआ था। मुझे बहुत अफसोस हुआ।

माताजी मुस्कुराईं और बोलीं, ''लड्डू लेकर जा।''

जब तक गुरुजी की इच्छा नहीं थी, तब तक हम लोग उनकी रिकार्डिंग नहीं कर सके। जड़ और चेतन सभी उनकी इच्छानुसार काम करते थे।

तू मुझे और गुरुजी को कभी अलग मत करना

वंदनीया माताजी के लगभग 150 गीत रिकार्ड हुए हैं। माताजी संगीत वाले भाईयों को और रिकार्डिंग टीम को ऊपर अपने हॉल में ही बुलाती थीं। वे स्वयं गीत चुनतीं या लिखवाती थीं। माताजी अपने विचार बतातीं और आद० प्रणव भाई साहब, उपाध्याय जी आदि गीत लिखते। उन्हें जहाँ जैसा शब्द चाहिये होता वे संशोधन करवातीं और फिर गाती थीं। गाते-गाते वे एकदम भावविह्वल हो जाती थीं। अक्सर रिकार्डिंग के समय कोई शब्द जीवंत हो उठता और वे भावावेश में चली जातीं। फिर उन्हें अपनी सुध-बुध नहीं रहती थी। स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी की समाधि-अवस्था के विषय में पढ़ा-सुना था पर वह कैसी होती है, यह माताजी को देखकर ही समझ पाये। उस दिन फिर

रिकार्डिंग का काम आगे नहीं बढ़ता था। जीजी कहतीं, ''भाई साहब, अब तो कल ही होगा'' और हम लोग लौट आते।

उन दिनों कैसेट का प्रचलन खूब जोर-शोर से था। गीतों के व परम पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों के कैसेट तैयार किये जा रहे थे। कैसेट के इनले कार्ड में परम पूज्य गुरुदेव का चित्र देने का निर्णय हुआ। जब माताजी को एक नमूना दिखाया गया तो माताजी ने कैसेट को उलट-पलट कर देखा और बोलीं, ''बेटा! मुझे और गुरुजी को कभी अलग मत करना।'' फिर बोलीं, ''बेटा, आने वाले समय में दुनिया अपनी समस्याओं का समाधान मेरे गीतों में और गुरुजी के प्रवचनों में ढूँढ़ेगी।''

मैंने उसे शिरोधार्य किया। सच तो है, शिव और शक्ति को भला अलग किया भी कैसे जा सकता है ?

तेरा डिब्बा नहीं चल रहा

अंतिम दिनों में माताजी बीमार रहने लगी थीं। निर्णय लिया गया कि माताजी को गर्मी के कारण बहुत परेशानी होती है, अत: उनके कमरे में ए.सी. लगाया जाये। माताजी के मना करने पर भी उनके कमरे में ए.सी. लगा दिया गया, पर वह हर दूसरे दिन खराब हो जाता था। मैं उसे चैक करता व चला कर जाता, पर अगले दिन फिर वही शिकायत मिलती। ए. सी. को ठीक करने के लिये अक्सर मुझे बुलाया जाता। मैं देखता, बाकी सब ए.सी. तो ठीक चल रहे हैं! बस माताजी का ही नहीं चल रहा। एक दिन माताजी मुस्कुराकर बोलीं ''लल्लू, तेरा डिब्बा नहीं चल रहा।'' मैंने नीचे का सिस्टम ऊपर फिट कर दिया, पर ऊपर जाकर वह भी नहीं चला।

मैं बहुत दिनों तक इसका रहस्य खोजता रहा। बहुत दिनों बाद एक दिन समाधान मिला कि यह तो उनकी माया थी। वह तो ब्राह्मणोचित जीवन जीने हेतु संकल्पबद्ध थीं। अत: बच्चों की भावना भी रख ली और अपना संकल्प भी निभाया।

गुरुजी-माताजी गुणों के भी पारखी थे।

मणि दीदी बताती हैं कि वे किसी के गुण को देखते तो उसकी प्रशंसा करते और अन्यों को भी उस गुण को धारण करने के लिये प्रेरित करते। उनकी निगाहें बड़ी पैनी थीं। एक बार गुरुजी किसी काम से नीचे आये थे। उन्हें प्यास

लगी तो यादव अम्माजी ने पानी पिलाया। गुरुजी गिलास देखकर बोले, ''वाह! गिलास तो खूब चमक रहा है।'' और पानी पीते-पीते ही उन्होंने उनके कमरे का निरीक्षण कर लिया। फिर एक दिन गोष्ठी में बोले, ''बेटा, स्वच्छता देखनी हो तो यादव अम्मा के घर जाकर देखो। विनम्रता सीखनी हो तो, रैणा की बहू (पत्नी) से सीखो। कपड़ों की धुलाई सीखनी हो तो शारदा अम्मा से सीखो।'' इस प्रकार वे सबके गुणों की प्रशंसा करते हुए गुण ग्राहकता सिखाते थे।

माताजी एक बार श्री चौहान जी की प्रशंसा करते हुए बोलीं, ''बेटा एक शबरी थी, जो मातंग ऋषि के आश्रम में सबके जगने से पहले ही रास्ता बुहार देती थी, और बेटा हमारे यहाँ, यह हमारे चौहान जी हैं।''

सब जानते हैं कि श्री चौहान जी का आजीवन यह नियम रहा। वे रात में दो-ढाई बजे ही उठकर शान्तिकुञ्ज क्षेत्र में प्रतिदिन झाड़ू लगाते थे।

अब तुम लोग भी भोजन कर लो

एक दिन चौके की एक बहन से चावल धोते समय हाथ से बाल्टी फिसल गई और बहुत सारा चावल, लगभग बाल्टी भर चावल नाली में बह गया। माताजी को पता चला तो उन्होंने देखा और सारा चावल इकट्ठा करके भर कर लाने को कहा। फिर बोलीं, ''अब इसे अच्छी तरह से धुलो फिर पकाओ। आज चौके की सब बहनें इसे ही खाएँगी।'' माताजी का आदेश भला कौन टाल सकता था? उस चावल को अच्छे से धोया गया और पकाया गया। बहनें सोच रही थीं कि आज नाली का चावल खाना पड़ेगा। माताजी ने देखा चावल पक गया है। बोलीं, ''छोरियो, एक थाली में थोड़ा भात परोस कर लाओ तो।'' माताजी को वह भात परोस कर दिया गया तो वे बड़े चाव से उसे खाने लगीं और बोलीं, ''बेटा! अन्न को बरबाद नहीं करना चाहिये। उसका अपमान नहीं करना चाहिये। इसे खाने से कोई बीमार नहीं पड़ेगा। अब तुम लोग भी भोजन कर लो।''

किसी के मन में कोई गलत भावना न आये, इसलिये माताजी ने पहले स्वयं उस भात को खाया, फिर सबको खिलाया। ❀

ऐसे ही सन् 1978 में जब बाढ़ आई थी, तब ब्रह्मवर्चस में पानी भर गया था। उस समय अधिकांश परिवार ब्रह्मवर्चस में ही रहते थे। दाल-चावल के कुछ बोरे आधे-आधे भीग गये। जब माताजी तक सब जानकारी पहुँची तो माताजी ने कहा, ''बेटा! सबको कह दो कि कुछ दिन तक

अपने-अपने घर में कोई खाना नहीं बनायेगा। सब खिचड़ी ही खायेंगे। घी मैं यहाँ से भेज देती हूँ।''

माताजी सबके मन की बात जान जाती थीं। एक दिन दोपहर में माताजी आराम कर रही थीं। एक बहन के मन में आया, ''माताजी मोटी हैं।'' इतने में माताजी बोलीं, ''तू सोचती है, माताजी मोटी हैं? कुछ काम नहीं कर पायेंगी? बेटा, मैं अभी भी 100 लोगों का खाना बना सकती हूँ।'' वह बहन बेचारी हैरान रह गई कि मेरे मन में विचार बाद में आया और माताजी ने जवाब उसके पहले ही दे दिया।

पहले सुबह-शाम की चाय-प्रज्ञा माताजी के चौके में ही मिलती थी। जब भीड़ बढ़ने लगी तब परिजनों की आवश्यकता को समझते हुए छोटी सी कैंटीन बना दी गई। उसमें चाय के साथ पकौड़ी व जलेबी आदि भी बन जाती थी। माताजी को पता चला कि लोग-बाग अनुष्ठान में भी भोजनालय से प्रसाद ग्रहण न कर कैंटीन में ही डटे रहते हैं। तब माताजी ने कहा था- ''बेटा, यह प्रसाद है। सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर प्रसाद से बनता है। इसे जिस भाव से खाओगे, वही मिलेगा।''

गुरुजी माताजी का दाम्पत्य जीवन एक आदर्श दाम्पत्य जीवन था। हर एक के लिये प्रेरणा देता हुआ कि परस्पर एक दूसरे का सहयोग ही जीवन के बड़े उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होता है। इसी में जीवन का असली आनंद है।

परिजन तो बताते ही हैं, पर माताजी भी गोष्ठियों में बताया करती थीं कि मथुरा में प्रारंभ के दिनों में जब माताजी सबको भोजन आदि कराकर बरतन साफ करने बैठतीं तो गुरुजी भी उनकी मदद करने लगते। तब माताजी उन्हें कहतीं, ''आचार्य जी, आप रहने दीजिये।'' इस पर गुरुजी कहते, ''माताजी, हमारे बच्चे कैसे सीखेंगे कि पत्नी का सहयोग कैसे करना चाहिये?''

गुरुजी कभी-कभी गोष्ठी में कहते, ''बेटा, दाम्पत्य जीवन कैसा होना चाहिये, इसे हमारे जीवन से सीखना।''

माताजी की आँख का आप्रेशन हुआ था। मैं माताजी से मिलने गई। उस समय लगभग 11 बज रहे थे। गुरुजी उन दिनों सूक्ष्मीकरण साधना में थे। गुरुजी भी माताजी को देखने आये थे। मुझे पता नहीं था कि गुरुजी, माताजी के

पास बैठे हैं। दरवाजा हल्का सा खुला था। मैं जैसे ही भीतर जाने लगी देखा, गुरुजी, माताजी के पास बैठे हैं। मैं पीछे हट गई। गुरुजी के दर्शनों का लोभ करके मैं बाहर ही खड़ी रही, लौटी नहीं। मैंने देखा वे माताजी का हाथ थाम कर बैठे हैं। लगभग एक घण्टा गुरुजी, माताजी का हाथ थाम कर बैठे रहे पर दोनों में बातचीत कुछ भी नहीं हुई।

माताजी अक्सर गुरुजी को याद कर प्रवचन में बताया करती थीं, ''बेटा, दिन भर काम करके थक कर जब मैं ऊपर जाती तो गुरुजी पानी का गिलास भर कर रखते और सीढ़ियों के मध्य तक आते थे। मेरा हाथ थाम कर ऊपर ले जाते और बिठाते, फिर अपने हाथ से पानी का गिलास उठा कर देते।'' यह बताते हुए वे अक्सर रो पड़ती थीं।

''सूक्ष्मीकरण साधना में जब वे गये तो मिशन के सब कार्यों की जिम्मेदारी मेरे कंधों पर सौंप दी। मैंने कहा, ''आचार्यजी, यह सब मैं कैसे कर पाऊँगी?'' तो बोले, ''मैं जो तुम्हारे साथ हूँ।'' जब कभी मथुरा आदि जाना पड़ता तो वे ऊपर से खिड़की में से देखते रहते थे।'' ❁

कभी-कभी मथुरा के दिनों की याद कर बतातीं, ''बेटा, इस गायत्री परिवार को हमने और आचार्य जी ने अपने खून-पसीने से सींचकर खड़ा किया है। मथुरा में बंदर खूब परेशान करते थे। मैं खाना बनाती। गुरुजी परोसने में मदद करते। हाथ में लाठी भी रखते और बंदरों को धकेलते रहते।'' ❁

''मथुरा में घर छोटा ही था। लैट्रिन-बाथरूम भी कम थे। कभी-कभी, कोई-कोई बहन अपने छोटे बच्चों को छत पर ही टट्टी-पेशाब करा देती। अक्सर हमें धुलाई करनी पड़ती थी। गुरुजी पानी डालते थे और मैं झाड़ू लगाती थी। कभी-कभी मैं पानी डालती और गुरुजी झाड़ू लगाते थे। झाड़ू की रगड़ से हाथों मे छाले पड़ जाते और कभी-कभी खून भी आ जाता। बेटा, इस मेहनत और प्यार से हमने परिवार को जोड़ा है।'' ❁

''मैं जल्दी-जल्दी घर का सब काम निबटा कर गुरुजी के काम में मदद करने तपोभूमि पहुँच जाती थी। गुरुजी को पत्र व्यवहार में भी मदद करती थी। मैं पत्र पढ़ती जाती और गुरुजी जवाब लिखते जाते।'' ❁

एक बार हम सब कार्यकर्ताओं की गोष्ठी थी। गुरुजी ने कहा, ''बेटा, तुम सब लोग परस्पर प्रणाम करते हो कि नहीं। रोज सुबह अपने पति के चरण

स्पर्श किया करो।'' फिर भाईयों की ओर उन्मुख होकर बोले, ''तुम लोग भी पत्नी को प्रणाम किया करो। परस्पर एक दूसरे का सम्मान करना चाहिये। तुमको देखकर बच्चे स्वयं ही सीख जायेंगे।'' ❀

जयपुर के श्री वीरेंद्र अग्रवाल जी भी बताते हैं कि एक दिन जब मैं गुरुजी के पास बैठा था, गुरुजी ने किसी काम से अल्मारी खोली। मैंने देखा उनकी अल्मारी में माताजी की तस्वीर रखी है। मैं कुछ पूछता इससे पहले ही गुरुजी बोले, ''बेटा, मैं माताजी को रोज प्रणाम करता हूँ। अपने सब कार्यों के लिये मैं माताजी से ही शक्ति लेता हूँ।''

गुरुजी महिलाओं के प्रति बहुत संवेदनशील थे

समाज में फैली कुप्रथाओं और संकीर्ण सोच आदि के कारण महिलाओं की दासता जैसी स्थिति का ध्यान करने मात्र से उन्हें असहनीय वेदना होती थी। उनकी दयनीय स्थिति पर वे बहुत आहत होते थे। हम लोग जिनने उनका सान्निध्य पाया है, देखा है। जब कभी वे महिला उत्पीड़न संबंधी कोई समाचार पढ़ लेते थे, तब तो आकुल-व्याकुल हो जाते थे। उनकी आँखों में आँसू आ जाते थे। कहते थे, ''कब, मातृ शक्ति का उद्धार होगा?'' उनके साहित्य में भी उनकी यह पीड़ा देखने को मिलती है। ❀

गोष्ठियों में अक्सर भाईयों को डाँट पिलाते थे, ''तू गर्म-गर्म रोटी खाएगा और छोरी तेरे लिये बैठी रहेगी? बेटा! ये गर्म रोटी माँगे तो मुझे बताना।'' बहनों को भी उन्होंने खूब आगे बढ़ाया। सामान्य बातचीत में भी वे बहनों को खूब प्रोत्साहन देते रहते थे। ❀

ऐसे ही एक दिन शायद वे कुछ परेशान थे। कोई खबर पढ़ ली होगी। उस दिन कार्यकर्ताओं की गोष्ठी में भाईयों को डाँटते हुए बोले, ''अच्छा! गरम रोटी खाना है? गरम रोटी खाना है?'' फिर बहनों की ओर उन्मुख होकर बोले, ''कहना अभी देती हूँ। फिर पहले खुद खा लेना। अच्छे से चबाना।'' गुरुजी ने लगभग 5 मिनट चबाने की नकल की और फिर बोले, ''और मुँह में डाल देना। कहना, तुम चबाना भी मत। इतना कष्ट भी क्यों करते हो?''ooo

उन दिनों कानपुर का वह दिल दहला देने वाला समाचार सुर्खियों में था। जब एक ही परिवार की तीन लड़कियों ने दहेज की ऊँची माँगों से आहत होकर आत्महत्या कर ली थी। तब गुरुजी ने कहा था, ''यदि सब लड़कियाँ

दहेज लेकर शादी करने से इंकार कर दें, तो यह दहेज का दानव वर्ष भर में खतम हो जायेगा।''

पंडित लीलापत शर्मा जी ने भी एक बार ऐसा ही एक संस्मरण सुनाया था कि गुरुजी को बहनों का कष्ट बिलकुल सहन नहीं होता था। वे कहते थे, ''जब तक मातृशक्ति रोती रहेगी, समाज का उद्धार संभव नहीं है।'' उन्होंने बताया, ''एक बार हम और गुरुदेव असम की यात्रा पर थे। ट्रेन में एक महिला बहुत बड़ा घूँघट ओढ़े बैठी थी। वह बहुत दुखियारी जान पड़ रही थी, क्योंकि वह लगातार रोये जा रही थी। गुरुजी की दृष्टि से वह भला कैसे ओझल रहती? एक स्टेशन पर जब उसके साथ के परिजन नीचे उतरे तो गुरुजी ने उसे पानी पिलाया और चना मुर्रा खाने को दिया। उसका कष्ट पूछा पर वह अपने मुख से कुछ बता नहीं पाई। गुरुजी तो अंतर्यामी थे, उसे सांत्वना दी। बोले, ''रो मत बेटी, तेरा कष्ट दूर होगा।'' साथ ही कहा, ''यह घूँघट खोल दे।''

उस महिला ने बस इतना ही कहा, ''यह सब मुझे मार डालेंगे।'' तब गुरुजी ने कहा, ''मैं उन्हें समझाता हूँ।''

महिला के परिजन जब ट्रेन पर चढ़े तो गुरुजी ने उन्हें समझाया। ''मनुष्य-मनुष्य के बीच क्या परदा? परदा तो आँखों का होता है। शिष्ट व्यक्ति शालीन वैसे भी रहता है अन्यथा घूँघट से शर्म ढकी नहीं रह सकती आदि-आदि।''

गुरुजी की बात का उन लोगों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने वहीं पर उसका घूँघट खुलवा दिया। इस प्रकार गुरुजी रास्ते में भी जनकल्याण करते चलते थे। ❁

एक दिन माताजी से एक लड़की (माधवी) ने प्रश्न किया, ''माताजी विधवा औरतों को बिंदी आदि नहीं लगाना चाहिये?'' उसके इस प्रश्न पर माताजी बोलीं, ''बेटा यह गलत धारणा है। सुहाग कभी मरता नहीं है। इसलिये बिंदी लगाना नहीं छोड़ना चाहिये।'' ❁

1986 में हरिद्वार का कुंभ

1986 में हरिद्वार में कुंभ लगने वाला था। एक दिन गुरुजी ने ब्रह्मवर्चस की पूरी टीम को बुलाया और बोले, ''देखो! कुंभ लगने वाला है। इस समय हिमालय की बड़ी-बड़ी हस्तियाँ भी आयेंगी। ऋषि, मनीषी, तपस्वी सब किसी के भी रूप में आ सकते हैं। तुम लोग ऐसा करना कि जितने भी लड़के

हो, सब हर आने वाले के जूते साफ करना। रगड़-रगड़ कर ठीक से साफ करना। अच्छे से चमकाना, बिल्कुल धूल न रहे।'' फिर बहनों की ओर मुखातिब होकर बोले, ''लड़कियो! तुम सब लोग डॉक्टरों वाला कोट पहन लेना और गले में स्ट्रैथोस्कोप टाँग लेना। जो भी आये, उसको पूरा ब्रह्मवर्चस दिखाना और बढ़िया से सब बताना। अच्छे से समझाना।''

बहनों ने गुरुजी से कहा, ''गुरुजी, हम यह सब कैसे करेंगे?'' गुरुजी बोले ''बेटा, सब हो जायेगा।''

हम सब गुरुजी के कहे अनुसार सुबह से ही तैयार हो जाते। भाई लोग बहनों को खूब चिढ़ाते भी रहते, ''देखो! देखो! डॉक्टर लोग आ गये।'' एक दिन 10-12 लोगों की टीम आई। डॉ. दत्ता भाई साहब ने मुझे बुलाया और कहा, ''मणि जीजी, आप इन्हें गाइड करना।'' मैं उनसे बोली, ''भाई साहब, मुझे कुछ नहीं आता है। आप प्लीज़ मुझे माफ करिये। मुझे हिन्दी भी ठीक से बोलनी नहीं आती है। मैं नहीं कर पाऊँगी। आप ही कर दीजिये।'' दत्ता जी बोले, ''आपको गुरुजी पर भरोसा नहीं है क्या?'' और मुस्कुराते हुए बोले, ''हम तो भई अपना काम करेंगे। जूता साफ करेंगे।'' मैं बोली, ''गुरुजी पर तो भरोसा है।'' वे बोले, ''बस, फिर आप ही गाइड करेंगी।''

जैसे ही वो लोग आए। मैंने उन्हें एक घण्टा गाइड किया। पूरा ब्रह्मवर्चस दिखाया। मैंने उन्हें क्या-क्या बताया, मुझे खुद नहीं पता। अंत में उन्होंने मुझसे पूछा, ''आपने कहाँ से मैडिकल किया है? आप अपना परिचय दीजिये।'' मैं थोड़ा घबराई कि अब क्या बोलूँ? मैंने अपना थोड़ा बहुत परिचय दिया और फिर उनसे पूछा, ''आप सब कहाँ से आये हैं?'' उन्होंने बताया ''हम सब लखनऊ के मेडिकल कॉलेज से आये हैं। यह हमारी पूरी डॉक्टरों की टीम है।''

अब तो मैं घबरा गई। मुझे कुछ सूझा नहीं। मैंने एक मुहावरा सुना था, 'सिर पर पैर रख कर भागना' पर उसका अनुभव मुझे उस दिन हुआ। मैंने उनसे कहा, ''मुझे कुछ काम है, आगे की बात आपको डॉक्टर दत्ता बतायेंगे'' और मैं वहाँ से भाग ली। आज भी, मैं जब उस घटना को याद करती हूँ, तो गुरुजी के शब्द याद आते हैं, ''बेटा, तुम बस वह करो जो मैं कहता हूँ। मैं जिस चेतना का अवतरण करना चाहता हूँ, वह मैं करा दूँगा।'' ❁

श्री ब्रजमोहन गौड़

(श्री ब्रजमोहन गौड़ जी 1969 में ग्वालियर में पूज्य गुरुदेव के सम्पर्क में आये। तत्पश्चात् समयदान करते रहे, टोलियों में भी जाते रहे। 1981 में पूज्य गुरुदेव के कहने पर स्थाई रूप से परिवार सहित शान्तिकुञ्ज आ गये।)

उनसे क्या जुड़ा, धन्य हो गया

ग्वालियर में शिवरात्रि पर्व 1969 में पूज्य गुरुदेव के द्वारा गायत्री मंदिर में गायत्री माता की प्राण प्रतिष्ठा हुई। मैं यह सुनकर वहाँ गया था कि एक संत आ रहे हैं। मैं गुरु की खोज में था। मैंने पूछा कि आचार्यजी कहाँ हैं? एक परिजन ने बताया कि कमरे में हैं। उनके पास दो-तीन महिलाएँ बैठी थीं। उनमें से एक महिला ने पूछा कि गुरुजी! कल्याण में शंकराचार्य ने लिखा है कि महिलाओं को गायत्री नहीं जपनी चाहिए। गुरुदेव ने कहा बेटी, शंकराचार्य ने वेद नहीं लिखे हैं। मैंने वेदों का भाष्य किया है। महिलाओं को गायत्री जप करना चाहिए। मैं सुनकर कमरे से बाहर आया। थोड़ी देर बाद एक आवाज सुनाई पड़ी, जिन्हें पूज्य गुरुदेव से दीक्षा लेनी हो, वे यज्ञशाला में आ जाएँ।

मैं बहुत वर्षों से गुरु की खोज में था। अनेक साधु-संतों के संपर्क में आया पर अन्त:करण ने कभी किसी को गुरु मानने की स्वीकृति प्रदान नहीं की। उस दिन हृदय मचल उठा। अनुभूति हुई कि गुरुदीक्षा इसी क्षण ले लेनी चाहिए। मैं यज्ञशाला में जाकर बैठ गया और पूज्य गुरुदेव से दीक्षा ले ली।

अब पूज्य गुरुदेव का सूक्ष्म शक्ति प्रवाह उपासना के द्वारा प्रेरणा देता रहा। धीरे-धीरे तन-मन सब पूज्यवर के विचारों में रंगता गया। घर बैठे-बैठे ही परिव्राजक बन गया। 1974 में शान्तिकुञ्ज पहुँचा। तब पूज्य गुरुदेव से साक्षात्कार हुआ। उन्होंने पूछा, ''क्या काम करते हो?'' मैंने कहा, ''नौकरी।''

''कितने पैसे मिलते हैं।'' मैंने कहा, ''250 रुपये।'' उन्होंने कहा, ''तुम्हारा वेतन दुगुना करा देते हैं।'' मैंने कहा, ''रुपये नहीं चाहिए।'' उन्होंने कहा कि व्यापार करा देते हैं। मैंने कहा, ''वह मैं नहीं कर सकता।'' उन्होंने कहा, ''जमीन-जायदाद दिलवा देते हैं।'' मैंने कहा, ''नहीं चाहिए।'' उन्होंने कहा, ''सोना-चाँदी दिलवा देते हैं।'' मैंने कहा, ''हमें नहीं चाहिए।''

पूज्य गुरुदेव नाराज होकर बोले, ''हमें नहीं जानते? हमने मूँगफली बेचने वालों को लखपति बना दिया है। हम हिमालय से आए हैं। अभी हमने अपनी तपस्या का चार आने खर्च किया है, बारह आने अभी हमारी मुठ्ठी में है।'' फिर वे बोले, ''तुम कुछ माँगते क्यों नहीं?'' मैंने कहा, ''कुछ नहीं चाहिए।'' उन्होंने कहा, ''तुम्हें संसार में कुछ नहीं चाहिए?'' मैंने कहा, ''कुछ नहीं चाहिए।'' उन्होंने कहा, ''फिर तुम्हें ब्राह्मण, फकीर बना दें।'' मैं चुप रहा। उन्होंने कहा, ''बेटा, फकीर बनने से डर लगता है?'' मैं चुप रहा।

उन्होंने कहा, ''फकीर बनने से आदमी डरता है। सोचता है, रोटी कहाँ से मिलेगी? पर बेटा भगवान् अपने कुत्ते को भी रोटी खिला देता है और भक्त को तो स्वयं हाथों से खिलाकर खाता है।'' मैंने कहा, ''बना दीजिए।''

प्रतिवर्ष शान्तिकुञ्ज आने-जाने का क्रम चलता रहा। जब विदाई होती तब तिलक लगाते समय कहते, ''जा रहा है, जाना-आना बंद कर। जा रहा है तो यहाँ आना मत। आए तो कभी यहाँ से जाना मत।''

एक बार 1980 दिसम्बर में काँवट, जयपुर, राजस्थान में श्री वीरेन्द्र अग्रवाल जी के यहाँ पूज्य गुरुदेव शक्तिपीठ का उद्घाटन करने पहुँचे। मैं और अग्रवालजी प्रात:काल उनके दर्शन करने गये। प्रणाम करने के बाद गुरुदेव ने कहा, ''अब तूने यदि नौकरी नहीं छोड़ी तो हजार वर्ष तक मेरा शाप तुझे खाएगा, और नौकरी छोड़ देगा तो हजार वर्ष तक मेरा आशीर्वाद तुझे फलेगा। तू नहीं देखता, बेटा, हमने तूफान चला दिया है।''

मैं मार्च 1981 में शान्तिकुञ्ज आया। गुरुदेव बोले, ''नौकरी छोड़ दी।'' मैंने कहा, ''नहीं।'' उन्होंने कहा, ''बेटा, यहीं से अपना इस्तीफा भेज दो।'' मैंने नौकरी छोड़ दी। परिवार में परिजनों का बहुत विरोध था। मित्र परिजन भी बहुत विरोध में थे, पर अन्तरात्मा ने कहा, ''पूज्य गुरुदेव की आज्ञा मानने में ही कल्याण है।'' मैं गुरुदेव-माताजी की छत्रछाया में रहने लगा।

कुम्हार जैसे बर्तन तैयार करता है, वैसे ही पूज्य गुरुदेव का स्नेह-प्यार और डाँट मिलने लगी। धीरे-धीरे मिशन के कार्यों को करने की जिम्मेदारी बढ़ती गई। शान्तिकुञ्ज में ब्राह्मण जीवन जीने का प्रशिक्षण और अभ्यास होने लगा। मन में तृप्ति, तुष्टि, शांति आने लगी। जीवन की सार्थकता समझ में आने लगी।

इतने से कम में हमारा गुरु हमें नहीं मिला

बसंत पर्व 1990 में प्रातः, पूज्य गुरुदेव के पास गोष्ठी चल रही थी। गोष्ठी के बाद उन्होंने मुझे रोक लिया। गुरुदेव कहने लगे, ''तूने मुझे बहुत धोखा दिया है।'' मैंने कहा, ''समझ नहीं पाया।'' उन्होंने कहा, '' तू सबसे कहता है कि मैंने गुरुदेव के लिए नौकरी छोड़ दी पर तेरे दिमाग में तेरे बीबी-बच्चे बैठे रहते हैं। तू हमारा नहीं है।'' मैं चुप हो गया।

उन्होंने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से मेरे अंतस में झाँक लिया था। मैं दुःखी हुआ और धर्मपत्नी से चर्चा करते हुए कहा कि यह जीवन तो बेकार हो गया, क्योंकि आज गुरुजी ने कहा कि हमारे दिमाग में बच्चों की चिन्ता रहती है।''

फिर दोपहर में मैं अपनी पत्नी के साथ गुरुदेव के पास पहुँचा। उन्होंने पूछा, ''क्या बात है?'' मैंने कहा कि मेरे दिमाग में अब बीवी-बच्चे नहीं हैं। उन्होंने कहा, ''इस छोरी के दिमाग में तो होगी।'' यह सुनकर मेरी पत्नी रोने लगी और कहा पिताजी मेरे दिमाग से भी बच्चों की चिन्ता समाप्त हो गई।'' पूज्य गुरुदेव ने कहा, ''झूठ बोलती है,'' मेरी पत्नी ने कहा, ''नहीं पिताजी। मैं सच बोलती हूँ।'' तब पूज्य गुरुदेव बोले ''आज से हम तुम्हारे हुए, इतने से कम में हमारा गुरु हमें नहीं मिला तो हम तुम्हें कैसे मिल जाते?''

मैंने कहा ''गुरुदेव एक प्रार्थना है। बच्चे पढ़े या न पढ़ें, शादी हो या न हो पर ये शान्तिकुञ्ज में मिशन का कार्य करें।'' गुरुदेव ने डाँट करके कहा, ''तूने फिर बच्चों की बात की'' मैंने हाथ जोड़कर कहा, ''गल्ती हो गई।'' गुरुदेव बोले, ''हमारी मर्जी, हम शादी करें या न करें, मैनेजर बनवाएँ या झाड़ू लगवाएँ, तू कौन होता है?''

ऐसे थे गुरुदेव, जिनसे जुड़कर यह जीवन धन्य हो गया। आज हम अनुभव करते हैं कि वे साक्षात् गुरुरूप में ईश्वर बनकर आए।

पूज्य गुरुदेव अव्यक्त इतने थे कि कोई जान नहीं पाया और महान इतने कि कोई समझ नहीं पाया।

पूज्य गुरुदेव अपना काम स्वयं ही करना पसंद करते थे।

उन्हें किसी से भी अनावश्यक सेवा लेना पसंद नहीं था। इस प्रकार अपने विराट परिवार को उन्होंने यह संदेश दिया कि जितना आवश्यक हो, उतनी ही सेवाएँ दूसरों से लो, बाकी काम स्वयं करो।

एक बार मैं गुरुजी के पास बैठा था। गुरुजी दाढ़ी बना रहे थे। जब वे दाढ़ी बना चुके तो ब्रश, पानी की कटोरी आदि उठाने के लिये मैं आगे बढ़ा, इसपर उन्होंने मुझे डाँट दिया। कहा, ''तुझे क्या मालूम ब्रश कहाँ रखना है? पानी कहाँ फेंकना है। तुझे क्या मालूम? तू बैठ।'' इस प्रकार वे अपना काम स्वयं ही करते थे। किसी की सेवा लेने के लिये तैयार नहीं रहते थे। ❁

ऐसे ही छत्तीसगढ़ के बिसाहू राम साहू अक्सर उनके बाल बनाया करते थे। वह जब कभी बाल बनाने के बाद दाढ़ी बनाने के लिए कहते, तो गुरुजी कहते, मैं खुद बनाऊँगा। कभी-कभी वह जिद पकड़ लेते ''मैं बना देता हूँ गुरुजी।'' तब वे झल्ला जाते और कहते-''तू मेरी दाढ़ी क्यों बनायेगा? क्या मैं नहीं बना सकता?

''तू मेरा सब काम करेगा, सब काम करेगा, जा! मेरा सब काम तू ही कर आ।'' अब तो बेचारे चुप हो जाते और चुपचाप चले जाते। धीरे-धीरे उन्हें मालूम हो गया था कि गुरुजी अपना वही काम दूसरों से कराते हैं जो वे खुद नहीं कर सकते। बाकी अपने सब कार्य वे स्वयं ही करते हैं। ❁

एक दिन शाम के लगभग 4:00 बजे थे। मैं उनके पास बैठा था। एक व्यक्ति उनके पास आया। उसने धोती-कुर्ता पहना था। कंधे पर साफा रखा था। गुरुजी ने पूछा, ''कहाँ से आये?'' वह बोला, ''हाथरस से आया हूँ।'' उसके पास एक छोटी सी थैली थी। जिसमें कुछ चीज रखी थी। उसने वह थैली उन्हें दी और चला गया।

गुरुजी ने थैली खोली, उसमें एक आम रखा था। गुरुजी बोले, ''वो एक ही आम दे गया। दो होते तो एक तू खाता, एक मैं।'' फिर वो उठे अल्मारी में से चाकू निकाला। आम को काटा और गुठली प्लेट में रखकर मुझे दे दी। फिर बोले, ''तू बहुत फायदे में रहा। आम के आम गुठली के दाम।''

कल्पना से बाहर की बात है। इतने बड़े सिद्ध पुरुष! स्वयं ने प्लेट निकाली, चाकू निकाला और स्वयं ही काट कर दिया। चाहते तो आदेश भी दे सकते थे। ❁

गायत्री माता के स्टेनो

एक दिन चर्चा के दौरान श्री राम खिलावन अग्रवाल जी ने मुझे बताया कि दिसम्बर 1977 में वे कुछ कार्यकर्ता गुरुजी के पास छत पर लेखन कर रहे

थे। उन दिनों पूज्यवर पूरी टीम को अपने पास बैठाकर लेखन सिखाते थे। उस समय उनसे मिलने का समय निर्धारित नहीं था, कोई भी, कभी भी मिलने चला आता था।

एक पाँच विषय के एम.ए. डिग्रीधारी व्यक्ति आये और गुरुजी से बोले-''गुरुदेव! मुझे अपना स्टेनो बना लें, आप जो भी बोलेंगे मैं लिख लूँगा और आपका काम आसान बना दूँगा।''

गुरुजी बोले, ''बेटा! तुम तो पाँच विषय में एम.ए. हो। मेरे पास तो छ:-सात विषय के एम.ए. भी आये थे।'' वे कुछ क्षण चुप रहे, फिर कहा-''मैं क्या करूँगा स्टेनो रखकर? मेरी एक मुसीबत है, और वो ये है कि मैं भी, किसी का स्टेनो हूँ। अब स्टेनो, स्टेनो कैसे रखे? वे (गायत्री माता) जो कहती हैं, वही मैं लिखता हूँ।''

वह व्यक्ति गुरुजी की सहजता पर दंग होकर चला गया। हम सबने एक दूसरे की ओर देखा। शायद सभी उनके शब्दों का अर्थ ढूँढ़ रहे थे।

उनके हर आचरण में कुछ न कुछ शिक्षण छिपा रहता था।

महापुरुष कितने विनम्र होते हैं, यह उनके व्यवहार से झलकता था। भारत माता मंदिर का उद्घाटन समारोह था। देश की प्रथम महिला प्रधानमंत्री माननीया इंदिरा गाँधी जी द्वारा उद्घाटन हुआ। स्वामी सत्यमित्रानंद जी ने पूज्यवर से भी इस संदर्भ में सलाह-मश्विरा किया था। निमंत्रण शान्तिकुंज भी आया था। तीन दिन का कार्यक्रम था। गुरुदेव ने तीसरे दिन मुझे बुलाया और कहा-''भारत माता मंदिर चलना है।'' मैंने कहा-''गाड़ी ले आऊँ।''
उत्तर मिला, ''पैदल चलेंगे। सन्तों के दर्शन पैदल चल कर ही करना चाहिए।''

हम दोनों पैदल भारत माता मंदिर के कार्यक्रम स्थल पर पहुँचे। बड़ी सहजता से उन्होंने मंच पर विराजमान सन्तों को प्रणाम किया और पण्डाल में अंतिम पंक्ति की कुर्सी पर विनम्रतापूर्वक बैठ गये।

स्वामी सत्यमित्रानंद जी के स्वयंसेवक सभी ओर फैले थे। चूँकि शान्तिकुञ्ज बहुत पास है, अत: बहुत से स्वयंसेवक गुरुदेव को पहचानते थे। उन्होंने मंच पर जाकर गुरुदेव के आने की सूचना दी।

''गायत्री वाले आ गये हैं, सबसे पीछे की अंतिम कुर्सी पर बैठे हैं।''

सुनकर सत्यमित्रानन्द जी गद्गद् हो गये। उस समय उनका ही

प्रवचन चल रहा था। उसे बीच में ही रोककर उन्होंने कहा, ''महापुरुष जब भी आते हैं, उनमें कभी कोई बनावट नहीं होती। ऐसी सहजता, सरलता कहीं देखने को नहीं मिलती। ऐसा ही एक महापुरुष हमारे आयोजन में, हमारे सौभाग्य से उपस्थित है। जो हमारे लिये ऐतिहासिक बात है। मैं आचार्य जी से कर-बद्ध प्रार्थना करता हूँ कि वे हमारे मंच की शोभा बढ़ाएँ और अपने आशीर्वचनों से हमें कृतार्थ करें।''

पूज्यवर उसी सहजता से उठकर मंच की ओर चल दिए। साथ में मैं भी था। स्वामी जी ने आचार्य जी को बैच लगाया व आशीर्वचन हेतु पुनः निवेदन किया।

पूज्यवर हर वस्तु में निर्माण की कल्पना करते थे। अतः इसे भी उसी दृष्टि से लेते हुए उन्होंने कहा-''देवियो-भाइयो! सप्तसरोवर क्षेत्र में अभी तक कोई दर्शनीय स्थल नहीं था। स्वामी जी ने भव्य मंदिर बनाकर यह कार्य पूर्ण किया। यह हिमालय का क्षेत्र है, इसमें केवल बड़े-बड़े जंगल ही थे। अब यह विशाल मंदिर इन्सान को देवता बनाने के कार्य में लगकर अपनी सार्थकता सिद्ध करेगा। सन्त, सुधारक, शहीद की पीढ़ियाँ प्रदान करेगा।''

बड़ी सहजता से भविष्य का निर्देशन भी दे दिया। ऐसी थी उनकी सहजता-सरलता। ❀

गुरुजी की सादगी के विषय में चाँदवानी जी बताते हैं कि सन् 1968 में जब पूज्यवर शान्तिकुञ्ज हेतु भूमि लेने आये थे। स्टेशन के पास ही काफी जमीन और मकान मिल रहे थे। पर उन्हें अपने गुरु का जैसा आदेश मिला, वैसा ही उन्होंने किया। सप्तऋषि आश्रम में, अनुसुइया कुटी में ठहरे। जब तक शान्तिकुञ्ज में उनके ठहरने लायक स्थान नहीं बना, तब तक गुरुदेव जब भी आते उसी कुटी में ठहरते थे।

सप्तऋषि आश्रम के पास की यह भूमि जो उस समय बहुत दलदली थी, खरीदी और इसी भूमि पर उन्होंने निर्माण करने की ठानी। श्री रामचन्द्र सिंह जी को उन्होंने कहा, ''एक साइकिल किराये से ले लो। किसी ठेकेदार को देखकर आते हैं।'' फिर उनको साथ लेकर चान्दवानी बिल्डर्स, ज्वालापुर, के पास गये। उन्हें लेकर आये, जमीन दिखाई। पूछा, ''यहाँ निर्माण कैसे हो सकेगा, बताओ?'' चाँदवानी जी ने जमीन देखकर कहा, ''यहाँ तो निर्माण

करना बहुत मुश्किल होगा और महँगा भी। आप कोई और जमीन देख लीजिये।'' गुरुजी ने कहा, ''हमें तो यहीं बनाना है। आप बताइये कैसे होगा?'' चाँदवानी जी ने कहा, ''आपको यहीं बनाना है, तो आप हमें छः महीने का समय दीजिये, तब हम बना सकते हैं।'' पूज्यवर बोले, ''आप छः माह लें या एक वर्ष, पर हमें बनाना यहीं है। बताओ, कैसे बन सकेगा?'' चाँदवानी जी ने कहा- ''हम यहाँ यूकिलिप्टस के पेड़ लगायेंगे। उससे पानी सुखायेंगे, तब निर्माण हो सकेगा।'' गुरुजी ने कहा, ''ठीक है, जैसा आप उचित समझें।'' फिर यहाँ एक हजार यूकिलिप्टस के पेड़ लगाये गये। तब कहीं जाकर ज़मीन का कुछ पानी सूखा और ईंट गारा रखने लायक जगह बनी। फिर यहाँ निर्माण कार्य सम्पन्न किया गया।

चाँदवानी जी बताते हैं कि निर्माण के बाद भी गुरुजी उनके पास अक्सर आया करते थे। उनसे पारिवारिक सम्बन्ध बन गये थे। गुरुजी उनके घर भी आया करते, और सब जनों के हाल-चाल पूछते। सबको प्यार-आशीर्वाद लुटाते। शान्तिकुञ्ज में उस समय कार भी आ गयी थी, परन्तु वे फिर भी रिक्शे से ही उनके पास आते-जाते। ऐसे सादगी-सम्पन्न थे पूज्य गुरुदेव। ❁

ऐसे ही सन् 1982 की बात है। खड़खड़ी में **श्री रामकिंकर उपाध्याय जी** की कथा का आयोजन था। आयोजकों ने शान्तिकुञ्ज में भी निमंत्रण भेजा था। एक दिन गुरुजी ने मुझे बुलाया और कहा, ''उन्होंने बहुत बार बुलाया है, उसमें चलना है।'' उस समय तक शान्तिकुञ्ज में कार नहीं थी। सामान ढोने वाला एक टैंपो था, उसे बुलवाया। उन दिनों भास्कर जी चालक थे। गुरुजी उनके बगल वाली सीट में बैठ गए। हम दो-तीन लोग पीछे बैठ गए। जब उसे स्टार्ट किया तो वो बंद हो गया। गुरुजी बोले, ''अरे बच्चो! उतरो, धक्का लगाओ।'' धक्का लगा कर गाड़ी को स्टार्ट किया और उस आश्रम में पहुँचे जहाँ कथा हो रही थी। कथा चल रही थी। गुरुजी बोले, ''देखो, कथा चल रही है। चुप-चाप चलकर पीछे बैठ जाना।'' उनकी स्वयं की महानता इतनी बड़ी कि स्वयं भी चुप-चाप हमारे साथ पीछे बैठ गये।

व्यास पीठ से उस युग के सबसे बड़े, विश्वप्रसिद्ध कथावाचक, श्री रामकिंकर उपाध्याय जी ने देख लिया। उन्होंने कथा को विराम दिया और मंच से कहा, ''हम सबका सौभाग्य है कि हमारे देश के महापुरुष, संत हमारे बीच

आये हैं। जिन्होंने गायत्री और यज्ञ को जन-जन तक पहुँचाया है। जिनके लाखों-करोड़ों शिष्य हैं, भक्त हैं। मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ कि वो मंच पर आ जायें।'' भीड़ मुड़ कर देखने लगी, ''कौन आया?'' पर गुरुजी तो सबसे पीछे बैठ गए थे। दिखाई नहीं पड़े। गुरुदेव ने हाथ जोड़ कर संकेत किया कि मैं ठीक हूँ। आप कथा प्रारंभ करिये। लेकिन रामकिंकर जी ने कहा, ''जब तक आप आगे नहीं आयेंगे, मैं कथा प्रारंभ नहीं करूँगा।''

गुरुजी आगे जाकर अग्रिम पंक्ति में बैठ गए। मंच पर फिर भी नहीं बैठे। रामकिंकर जी गुरुदेव को पहचान गये थे, अत: कथा कहते-कहते उन्होंने कहा ''आज का दिन मेरे जीवन का सबसे बड़ा सौभाग्य का दिन है। देश-विदेश में जिनकी कथा मैं कहता आया हूँ, आज वो स्वयं मेरी कथा श्रवण करने के लिये मेरे सम्मुख बैठे हैं।'' ❁

महापुरुष कितने अव्यक्त होते हैं, यह पूज्यवर के पास ही देखने को मिला। उनकी सादगी से हर कोई चकित हो जाता था। उनकी सादगी देखकर पहली नजर में तो किसी को विश्वास ही नहीं होता था कि वे ही गुरुजी हैं।

एक बार लन्दन से एक व्यक्ति गुरुजी से मिलने आया। मैं ऊपर ही बैठा था। साथ में दो तीन व्यक्ति और थे। उस समय कोई भी, कभी भी गुरुजी के पास चला जाता था। वह भी ऊपर आया पर गुरुजी को वह पहचानता नहीं था। आकर गुरुजी से बोला, ''मैं गुरुजी से मिलना चाहता हूँ।'' गुरुजी ने उत्तर दिया, ''मुझे ही लोग गुरुजी कहते हैं।'' उनकी सादगी व वेश-विन्यास देखकर उसे विश्वास ही नहीं हुआ। शायद मन में किसी जटाजूटधारी की कल्पना थी, अत: उसने फिर कहा, ''मैं पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी से मिलना चाहता हूँ।''

गुरुजी ने उत्तर दिया, ''हाँ भई! मैं ही आचार्य श्रीराम शर्मा हूँ।''

कुछ देर तक तो वह हैरानी से उन्हें देखता ही रह गया। फिर बोला, ''इतने बड़े महापुरुष! इतने सरल, इतने सीधे-साधे भी हो सकते हैं क्या?'' उसने उन्हें प्रणाम किया और उनके चरणों में ही बैठ गया। उठाये नहीं उठ रहा था। पूज्यवर ने ही स्नेहपूर्वक उसे उठाया। उसने अपनी जिज्ञासाओं का समाधान पाया और उनकी सहजता को हृदय में धारण कर शान्तिकुञ्ज से विदा हुआ। ❁

श्रीमती श्रीदेवी यादव

(श्रीमती श्रीदेवी यादव माताजी सन् 1962 में गुरुदेव से मिलीं। मथुरा आती-जाती रहीं। सन् 1982 में गुरुदेव के बुलाने पर पूर्णरूप से शान्तिकुञ्ज आ गईं।)

गुरुजी से बातचीत

श्रीदेवी अम्माजी बताती हैं कि 1958 का यज्ञ होने वाला था। उसके लिये गायत्री मंत्र लेखन अभियान चल रहा था। एक राव जी साहब हमारे घर आते थे, उनके कहने पर मैंने मंत्र लेखन किया, पर कुछ दिनों बाद ही राव जी का देहांत हो गया और हम उस यज्ञ में शामिल नहीं हो पाये। बाद में सन् 1962 में पिताजी के साथ मैं, मथुरा में गुरुजी से मिली। गुरुजी ने हाल-चाल पूछा। बहुत कम उम्र में ही मेरे पति चल बसे थे। गुरुजी ने कहा, ''बेटी, तेरा मन नहीं लगता, तो तू मेरे पास आ जाया कर।'' फिर तो हमारा आना-जाना लगा ही रहता। गुरुजी खूब बातचीत करते और खूब प्यार देते। सत्र पूरा होने के बाद भी हम कई-कई दिन तक गुरुजी के पास गायत्री तपोभूमि, मथुरा में रुक जाते थे। मैं गुरुजी के पास बैठी रहती, वे अपना लेखन, लोगों से मिलना-जुलना आदि काम करते रहते।

एक दिन गुरुजी ने मुझे अपने पास बिठाया। मैं गुरुजी के पास ही तखत पर बैठ गई। गुरुजी ने कहा, ''तुम रामायण पढ़ती हो, सो ठीक है। गीता पढ़ती हो, वो भी ठीक है। द्वादश अक्षरी (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः।) जपती हो ये भी अच्छी बात है। एक माला गायत्री मंत्र की और कर लिया करना।'' मैंने कहा, ''गुरुजी, मैं 24 बार तो जपती हूँ।'' गुरुजी बोले, ''एक माला कर लिया करना।''

फिर गुरुजी ने मुझे अपने पास बिठाया और रामायण की कुछ चौपाइयाँ बोलने लगे, ''परपति रति करईं, रौरव नरक कलप सत परहिं....आदि, आदि।'' और बोले, ''तू इन सबका चिंतन क्यों करती रहती है? विधवा होने के कई एक कारण होते हैं। तू ऐसा सब क्यों सोचती रहती है?'' मैं गुरुजी की बात सुनकर हक्की-बक्की रह गई। ''गुरुजी मन की बात भी पढ़ लेते हैं! मेरे हृदय की सब बात जान रहे हैं!''

मैंने गुरु जी से पूछा, ''गुरुजी, मेरा भविष्य कैसा निकलेगा?'' गुरुजी बोले, ''तेरा भविष्य मैंने बना कर रख दिया है। तू चिंता मत कर।''

एक दिन बात करते-करते मैंने गुरुदेव के दोनों हाथ पकड़े और पूछा, ''गुरुजी आप कौन हैं ? गुरुजी बड़े सहज ढंग से अपनी ओर इशारा करते हुए बोले, ''देखती नहीं, मैं कौन हूँ ?'' मैंने कहा, ''गुरुदेव, सब तो आपको भगवान् कहते हैं।'' गुरुजी बोले, ''हाँ बेटा, तेरा तो मैं भगवान् ही हूँ। तुझे भगवान् से मिलाऊँगा और भगवान् के कंधों पर बिठाऊँगा भी।'' यह कहकर गुरुदेव हँसने लगे, पर उस दिन से आज तक, मैं जब ध्यान करती हूँ तो मुझे गुरुजी ही दिखाई देते हैं। गायत्री माता या और कोई देवी-देवता नहीं। ०००

एक बार मैं और पिताजी शान्तिकुञ्ज आये हुए थे। पिताजी ने गुरुजी से कहा,''गुरुजी, हमारा तो समय अब नजदीक है, आप इसका ध्यान रखना।'' गुरुजी बोले, ''हाँ, मैं ध्यान रखता हूँ। अब मैं क्या करूँ ? क्या दूँ... देने के लिये ? हाँ, देने लायक जो है वो दूँगा, साहस दूँगा, धैर्य दूँगा।'' वास्तव में मैंने देखा, मेरे पास हिम्मत बहुत है।

दिव्य आनंद

गुरुजी बार-बार आने के लिये कहते थे, सो पिता जी की मृत्यु के बाद सन् 1982 में मैं शान्तिकुञ्ज आ गई। एक बार मैंने गुरुजी से कहा, ''गुरुजी, आप मेरा ध्यान रखना।'' गुरुजी बोले, ''बेटा! मैं धोखा देने वाला आदमी नहीं हूँ। तुमने मेरा पल्ला पकड़ा है तो निराश नहीं होने दूँगा। किसी को तुझे सताने नहीं दूँगा। ध्यान तो मैं तेरा पहले भी रखता था, अब विशेषकर रखूँगा। सूक्ष्म शरीर से सौ वर्ष तक तुम्हारे साथ रहूँगा।'' फिर उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरा और कान में उँगली डाली। मुझे बड़ी दिव्य अनुभूति हुई। ऐसा लगा जैसे मेरे चारों ओर आनंद ही आनंद छा गया। हर क्षण गुरुदेव की निकटता का आभास होता रहा। ऐसा लगता रहा जैसे सर्वत्र गुरुजी ही गुरुजी छाये हैं। तीन दिन तक मैं उस दिव्य आनंद, अलौकिक आनंद की मस्ती में डूबी रही।

हर पल संरक्षण

एक बार मैं बद्रीनाथ गई। पिताजी बद्रीनाथ का विवरण सुनाते थे। रास्ते में बहुत ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ हैं, गहरी खाइयाँ हैं। मैं सोचती थी जाने कैसा लगता होगा ? बस में से जब मुझे गहरी खाई दिखाई दी तो मुझे बहुत डर लगने लगा। साँस फूलने लगी, घबराहट होने लगी। इतने में मुझे लगा जैसे खिड़की में गुरुजी खड़े मुस्कुरा रहे हैं। मैंने गौर से देखा तो ओझल हो गये। फिर

थोड़ी देर में लगा जैसे खिड़की में गुरुजी हँस रहे हैं। तीन-चार बार गुरुजी मुझे खिड़की में हँसते, मुस्कुराते दिखाई दिये। उनकी इस आँख-मिचौनी में और उनके दर्शन करके मेरा मन इतना प्रसन्न हो गया कि मेरा सारा डर कहाँ चला गया, मुझे पता ही नहीं चला। फिर रास्ते भर मुझे डर नहीं लगा। ❀

हमारे पिताजी के पास काफी जमीन-जायदाद थी। पिताजी की अकेली संतान होने के नाते मैं उसकी अकेली वारिस थी। पिताजी के बाद सब संपत्ती मुझे मिलेगी यह सोचकर, हमारे ही परिवार के कुछ लोगों ने मेरी हत्या करने की साजिश रची। वे लोग मुझे कभी-कभार कह भी देते थे कि अकेली वारिस हो, कोई मार डाले तो? पर मेरे मन में शंका तो दूर ऐसा कोई ख्याल भी नहीं आया कि इनकी बात में कोई सच्चाई भी हो सकती है।

सन् 1977 में परम वंदनीया माताजी का पत्र आया। लिख था, ''तू शान्तिकुञ्ज आ जा। गुरुदेव चिंता करते हैं। कहते हैं, छोरी वहाँ अकेली है, कोई गला घोंट देगा।'' कुछ दिनों बाद वीरेश्वर भाई साहब कार्यक्रम के लिये हमारे क्षेत्र में आये तो उनके पास भी संदेश दिया और कहा, ''लड़की वहाँ अकेली पड़ी है, देखकर आना और उसे आने के लिये कहना।'' मैंने भाई साहब को शान्तिकुञ्ज के लिये कुछ अनुदान दिया और कुछ दिन में अपना काम समेट कर आने का संदेश दिया। सप्ताह भर बाद मैं शान्तिकुञ्ज आ गई, और आने के कुछ ही दिनों बाद मुझे समाचार मिला कि हमारे घर की एक बहू की हत्या हो गई है। बाद में उस बहु के मायके वालों के द्वारा यह रहस्य खुला कि पैसा तो मुझे मारने के लिये दिया गया था और धोखे से उनकी बेटी की हत्या हो गई। इस प्रकार पूज्य गुरुदेव ने दूर रहते हुए भी आने वाली विपत्ती की ओर संकेत ही नहीं किया बल्कि मेरी रक्षा भी की। ❀

सन् 1981 में एक दिन शिकोहाबाद, जि. फिरोजाबाद में हमारे पैतृक घर में डाकू आ गये। घर में पिताजी, मैं और एक दो लोग और थे। लगभग रात हो गई थी। हम लोग चारपाई पर मच्छरदानी लगाकर सोने ही जा रहे थे कि डाकू घर में घुसे, उनके हाथ में बंदूकें थीं। सामने के रास्ते से पुलिस वाले अक्सर आया-जाया करते थे। वे लोग कभी-कभी पानी पीने के लिये घर में भी आ जाते थे। हमने सोचा पुलिस वाले होंगे। इतनी देर में वह लोग आँगन में हमारी चारपाई के पास आ गये। मच्छरदानी खींच कर एक तरफ कर दी और

बंदूकें तान कर बोले, ''हम आप लोगों को कुछ नहीं कहेंगे, बस पानी पिला दो।'' जब तक हमने उन्हें पानी पिलाया उन्होंने घर का जायजा ले लिया कि घर में कितने लोग हैं। दो लोग हमारे ऊपर बंदूकें ताने खड़े रहे। बाकी लोगों ने, जो कुछ उनके काम की चीज घर में मिली, उसे बाँध लिया। घर में 15-20 तोला सोना रखा था। जहाँ वह रखा था, वहीं काष्ठ पात्र आदि पूजा के बर्तन रखे थे। डाकुओं ने सोचा यहाँ तो सब पूजा का सामान है और उस अल्मारी की ज्यादा छान-बीन नहीं की। इस प्रकार जेवर आदि सब बच गये। घर में कुछ विशेष सामान था नहीं, सो डाकुओं को ज्यादा कुछ मिला नहीं। वे पिताजी के पास आकर बोले, ''इतना बड़ा घर है, पैसा भी खूब होगा। बताओ कहाँ है?'' पिताजी ने कहा, ''मैं तो अपने पास कुछ रखता नहीं, ये मेरी बेटी है इसी को सब दे देता हूँ। इसीसे पूछ लो।'' उन्होंने मुझसे पूछा, ''माताजी, पैसा तो बहुत होगा आपके पास, कहाँ रखा है?'' घर में कुछ विशेष पैसा तो था नहीं। मैंने उन्हें सब सच-सच बता दिया कि पैसा तो हमारे पास बहुत है, पर घर में नहीं है। सामने जो इंटर कालेज है, कुछ पैसा उसको बनवाने में लगा दिया। कुछ पैसा, शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार, में हमारे गुरुजी रहते हैं, उन्हें दे दिया। अपने खर्चे के लिये जो रखा है, वह बैंक में जमा है। घर खर्च के लिये थोड़ा सा पैसा घर में है, वह सामने कोठरी में पूजा के पास डब्बे में पड़ा है। वह पैसा डाकुओं को पहले ही मिल गया था। मेरी बात सुनकर डाकुओं में से एक ने कहा, सबको कमरे में बंद कर दो। इतने में, किसी एक डाकू की नजर छत पर पड़ी। उसे लगा वहाँ कोई है। उसने पूछा, ''घर में और कौन-कौन है?'' हमने कहा, ''हमारे अलावा और कोई नहीं है।'' वह बोला, ''छत पर कौन है?'' हमने कहा, ''कोई नहीं है।'' पर डाकुओं को छत पर कोई सफेद धोती-कुर्ता पहने, हाथ में बड़ा सा डंडा लिये खड़ा दिखाई दे रहा था। वे बोले, ''छत पर सफेद धोती-कुर्ते वाला कौन है? ऊपर जाने का रास्ता किधर है?'' और घर के एक व्यक्ति को आगे करके वे सीढ़ियों की तरफ गये। वे सीढ़ियाँ चढ़ ही रहे थे कि पता नहीं क्या हुआ वे हाँफते हुए और डर के मारे काँपते हुए, उल्टे पैरों भागे और भागते ही चले गये। घर का जो कुछ सामान उन्होंने पोटलियों में बाँधा था, उसे भी थोड़ी दूर जाकर एक पेड़ के नीचे छोड़ गये। इस प्रकार पूज्य गुरुदेव ने घर में घुस आये डकैतों को भगाया। ❀

डॉ. ओ. पी. शर्मा एवं डॉ. गायत्री शर्मा

(डॉ. ओ. पी. शर्मा जी एवं डॉ.गायत्री शर्मा 1980 में पूज्य गुरुदेव के सम्पर्क में आये। उसके बाद लगातार संपर्क में रहे, टोलियों में भी जाते रहे। 1989 में डॉ. ओ. पी. शर्मा जी स्थाई रूप से शान्तिकुञ्ज आ गये।)

मन की बात सुनने वाले हमारे गुरुदेव

बात जनवरी 1981 की है, परम पूज्य गुरुदेव सुल्तानपुर गायत्री शक्तिपीठ व गायत्री प्रज्ञापीठ में प्राण प्रतिष्ठा के कार्यक्रम हेतु आये थे। वहाँ से उन्हें लखनऊ जाना था। हम दोनों के मन में प्रेरणा हुई कि गुरुजी को लखनऊ तक विदा करने चला जाय। उन दिनों हम दोनों महिला और पुरुष चिकित्सालय में अधीक्षक के पद पर तैनात थे, सो छुट्टी बड़ी मुश्किल से मिलती थी, लेकिन उस दिन रात में सी. एम. ओ. से बात हुई और छुट्टी मिल गई। हम दोनों जब विदाई स्थल पर पहुँचे तो वहाँ बहुत भीड़ थी। हम दोनों दूर से ही एक ऊँचे स्थान पर खड़े हो कर गुरुवर को देखने लगे। हमने सोचा, जैसे ही गुरुदेव उठेंगे, हम अपनी कार में बैठ कर उनकी गाड़ी के पीछे चल देंगे।

गुरुदेव को लेने के लिये लखनऊ से कई गाड़ियाँ आई थीं। हम सोच रहे थे कि यदि गुरुदेव हमारी कार में बैठ कर चलते, तो हमारा कितना सौभाग्य होता? गुरुदेव के उठते ही हम अपनी कार के पास पहुँच गये। गुरुदेव आये और हमारी कार के पास आकर खड़े हो गये और बोले, ''हम इसी में बैठेंगे।'' डॉ. शर्मा जी ने कार का दरवाजा खोला और गुरुदेव उसमें बैठ गये। हमारी खुशी का ठिकाना नहीं था। मन ही मन हम सोच रहे थे कि हम कितने सौभाग्यशाली हैं, जो गुरुवर ने हमारे मन की बात बिना कहे ही पढ़ ली और हमारी अभिलाषा पूरी की।

रास्ते में एक जगह गुरुदेव ने कार रोकने को कहा। कार जहाँ रुकी थी, वहाँ दूर-दूर तक कोई नहीं दिख रहा था, पर अचानक पता नहीं कहाँ से पंद्रह-बीस लोग आरती का थाल ले कर आ गये। उन्होंने गुरुवर की आरती उतारी। गुरुदेव ने उन सभी से घर वालों के नाम ले-लेकर सब का हाल-चाल पूछा। हमें आश्चर्य हुआ कि अभी तो कोई नहीं था, अचानक ये लोग कहाँ से आ गये

और गुरुदेव को इनके घरवालों के, पत्नी-बच्चों के जो यहाँ हैं भी नहीं, नाम कैसे याद हैं? यह सब देखकर हम उनकी सर्वज्ञता के आगे नतमस्तक थे।

पत्ती-पत्ती में गुरुदेव

गायत्री दीदी बताती हैं कि अपने पिता के घर में, बचपन में मैं एक फोटो टँगी देखती थी। जिसमें एक कदम्ब के पेड़ के नीचे राधा-कृष्ण खड़े थे और उस वृक्ष के प्रत्येक पत्ते में भी वही राधा-कृष्ण बने थे। मैं सोचती थी कि पत्ती-पत्ती में भगवान कैसे हो सकते हैं? इसकी स्पष्ट अनुभूति मुझे उस समय हुई जब हम गुरुदेव को लखनऊ छोड़ कर वापिस लौटे।

परम पूज्य गुरुदेव को विदा करके डॉ. शर्मा जी और मैं जब सुल्तानपुर के लिये रवाना हुये तो मन बहुत भारी था, लग रहा था जैसे कुछ छूटा जा रहा है। प्रात:काल का समय था और पूज्य गुरुदेव की बहुत याद आ रही थी। भारी मन से रास्ते के पेड़ों को देखते हुए जा रही थी कि अचानक अन्त:करण में प्रेरणा आयी कि गुरुवर तो पत्ती-पत्ती में विराजमान हैं और मुझे ऐसा प्रतीत भी होने लगा, ठीक वैसे ही जैसे बचपन में पत्ती-पत्ती में राधाकृष्ण को देखती थी।

यह भाव इतना प्रबल था कि आँखों से अश्रु झरने लगे। डॉ. शर्मा जी ने पूछा, ''रो क्यों रही हो?'' हमने कहा, ''भगवान् गुरुदेव के रूप में आये हैं। वह पत्ती-पत्ती में विराजमान हैं, ऐसा हमें अनुभव हो रहा है और ये दु:ख के नहीं खुशी के आँसू हैं कि भगवान् ने गुरुवर के रूप में हम लोगों को दर्शन दिया है।''

यह अनुभूति इतनी स्पष्ट, इतनी सजीव थी कि इसे वाक शक्ति से बताया नहीं जा सकता। उसी दिन अन्दर से संकल्प जागा कि दोनों या दोनों में से कोई एक परम पूज्य गुरुदेव के चरणों में आजीवन समर्पित हो कर उनका कार्य करेंगे। बच्चे छोटे थे, एक पहली में और दूसरा पाँचवी में पढ़ रहा था और मुझे निर्देश हुआ कि अपनी जिम्मेदारी पूरी करने पर ही आयें। यह अनुशासन मान कर एक के आने का दृढ़ निश्चय हो गया और डॉ. शर्मा जी शान्तिकुञ्ज आ गये और हम वहीं रह कर पारिवारिक जिम्मेदारी, चिकित्सक की नौकरी और गुरुवर का कार्य करते रहे। कण-कण में उनके स्वरूप की वह अनुभूति आज भी ज्यों की त्यों मन में सजीव है।

हम भगवान से लेना जानते हैं

27 अप्रैल 1981 को बस्ती में प्राण-प्रतिष्ठा का कार्यक्रम था। कार्यक्रम के पश्चात् पूज्यवर जब लोगों से मिलने के लिये बैठे तो हमसे बोले, ''तुम हमारे पास खड़े रहना और लोगों को दवा लिख देना।'' हम सोचने लगे, ''हम क्या दवा लिखेंगे?'' खैर हम उनके पास खड़े हो गये। लोग अपनी-अपनी समस्या कहते और गुरुदेव आशीर्वाद दे देते। कोई गंभीर बिमारी से पीड़ित था, तो उसे भी गुरुदेव ने आशीर्वाद दे दिया। कार्यक्रम समाप्त होने के बाद निवास स्थान पर जाकर हमने गुरुदेव से निवेदन किया कि गुरुदेव, बीमारी कैसे ठीक होगी? गुरुदेव ने कहा, ''बेटा, करता तो भगवान है। लोग भगवान से लेना नहीं जानते। हम उनसे लेना जानते हैं, हम उनसे कहते हैं, वो करते हैं।''

उनके यह शब्द सुनते ही मेरी शंका का समाधान हो गया और मुझे एम.बी.बी.एस में पढ़े हुए वे शब्द याद हो आये, ''हार्ट कैसे कार्य करता है यह विज्ञान का विषय है, लेकिन हार्ट किसने बनाया? सर्जन कट्स एण्ड गॉड युनाइट्स''

1982 जनवरी में, मैं 15 दिन के प्रज्ञा-पुराण प्रशिक्षण हेतु सुल्तानपुर से शान्तिकुञ्ज आया था। 5-6 दिन बाद लगभग नौ बजे के करीब हम गुरुदेव के पास बैठे थे कि श्री रामजनम वर्मा जी अपने आठ वर्ष के बेटे को लेकर आये और कहा, ''गुरुजी, इसकी साँस फूलती है।'' गुरुदेव ने कहा, ''अभी से साँस फूलेगी तो क्या होगा? हम अपने कंधों पर ले चलेंगे, गायत्री माता से कह देंगे ठीक हो जायेगा।'' उस समय पूज्यवर कमरे में टहल रहे थे, थोड़ा रुके और कागज पर लिखा शितोप्लादि चूर्ण, एक चम्मच सुबह-शाम, आशीर्वाद और अपना हस्ताक्षर करके दे दिया। उस घटना को देखकर मन में आया यह कैसे ठीक हो जायेगा? जबकि इसे रिह्यूमेटिक हार्ट की बीमारी जान पड़ती है। पूज्यवर ने मेरे मन की बात शायद पढ़ली और मुझे कहा, ''माताजी के पास चले जाओ।'' माताजी ने मुझे चाय पिलायी और बोलीं, ''तुम्हें गोष्ठी लेने पशुलोक जाना है।'' बात मेरी समझ में आ गई कि मुझे क्यों भेजा जा रहा है? श्री रामजनम वर्मा जी पशुलोक में ही रहते थे।

वहाँ जाकर, मैंने सबसे पहले बच्चे का परीक्षण किया। उसे वही दिल की बीमारी निकली, जो मैंने सोची थी। 15 दिन बाद मैं सुल्तानपुर वापिस आ

गया। कुछ वर्षों बाद जब रामजनम वर्मा जी से बच्चे की बीमारी के विषय में चर्चा हुई, तो उन्होंने बताया कि वह तो पूर्णत: स्वस्थ है, कोई दवा नहीं ले रहा है और उन्होंने गुरुवर की दवा के अलावा और कोई दवा भी नहीं की। आज वह बालक इंजीनियर है। प्राणशक्ति अनुदान क्या है, इसे मैंने पहली बार अनुभव किया। बाद में तो मैंने ऐसे बहुत से केस देखे, जब पूज्यवर ने मात्र आशीर्वाद से ही रोग को ठीक कर दिया।

जीवन दान देने वाले महाकाल

डॉ. गायत्री शर्मा बताती हैं कि बचपन में एक दिन मेरी माँ मेरे बड़े भाई की कुण्डली एक पंडित जी को दिखा रही थीं। हमने कहा, ''पंडित जी, मेरी भी कुण्डली देखकर बताइये, हम क्या बनेंगे?'' पंडित जी ने मेरी माँ से कहा, ''बिटिया की उच्च शिक्षा और राज योग है, लेकिन भरी जवानी में मृत्यु योग है।'' बात आई गई हो गई।

1982 में हम पूज्य गुरुदेव के समक्ष बैठे थे, परम पूज्य गुरुदेव ने पूछा, ''तुमने डॉ. साहब को रोटी बनाना और चाय बनाना सिखाया या नहीं।'' हमने सोचा, शायद इसलिये कह रहे हैं कि उन्हें शान्तिकुञ्ज में अकेले रहना है, लेकिन उनकी इस बात का रहस्य तब खुला, जब डॉ. साहब को पूरी गृहस्थी सँभालनी पड़ी। घटना अप्रैल, 1983 की है। हम जिला सुल्तानपुर में तैनात थे। डॉ. शर्मा जी टोली में चल रहे थे, हमने नवरात्रि अनुष्ठान दूध-केला पर किया और पूर्ण आहुति हेतु कार्यकर्त्ताओं के आग्रह पर गायत्री शक्तिपीठ गये। जबकि हमें लेप्रोस्कोपिक आपरेशन हेतु अमेठी जाना था। पूर्णाहुति के बाद अचानक मेरी साड़ी में आग लग गयी। मैं वहीं यज्ञशाला में करीब 50 प्रतिशत जल गई। यह घटना प्रात: 6:30-7:00 बजे की थी। मुझे तुरन्त हास्पिटल ले जाया गया। मन में भाव आया कि मरना तो एक दिन सभी को है, कोई बात नहीं, लेकिन यदि हम मर गये तो फिर बच्चे बनकर भगवान का काम कैसे कर पायेंगे? जैसे ही आग बुझी मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे तीव्र प्रकाशमय सूर्य मेरे अन्दर समा गया हो।

इधर जो लोग उस समय शान्तिकुञ्ज में थे, वह बताते हैं कि परम पूज्य गुरुदेव अचानक प्रणाम से उठकर ऊपर चले गये और जब नीचे आये, तो वंदनीया माताजी से बोले, ''बेटी गायत्री पर दुर्घटना घट गई है। यदि कोई समाचार लेकर नहीं आता, तो पता लगाइये।''

सुल्तानपुर से हमें तुरन्त लखनऊ, बलरामपुर चिकित्सालय में शिफ्ट किया गया। हालत गंभीर थी। डॉ. ए. सी. राय से हमारे भाई ने पूछा, ''कब तक खतरे से बाहर हो जायेंगी?'' उन्होंने कहा, ''चार-पाँच दिन तक कुछ कहा नहीं जा सकता।'' उसी दिन शाम को बड़ी बहिन ने चिट्ठी लिखकर बेटे द्वारा परम पूज्य गुरुदेव को सूचना पहुँचाई। पूज्यवर ने कहा, ''एक-एक करके बताओ, कहाँ-कहाँ जली है? वे नंबर गिनते गये, जब पूरा समाचार सुन लिया तो बोले, ''अब तुम जाओ। तुम्हारा काम समाप्त और मेरा काम शुरू।''

प्रातःकाल तक मेरी हालत में काफी सुधार हो गया था। डॉ. राय साहब जो उस समय बलरामपुर चिकित्सालय के निर्देशक थे, बोले, ''ताज्जुब है! इतनी जल्दी इतना सुधार कैसे हो गया?''

डॉ. ओ. पी. शर्मा जी बताते हैं कि तीन दिन बाद ही मुझे परम पूज्य गुरुदेव का पत्र मिला, ''बेटी गायत्री को नया जन्म प्रदान हुआ।'' जीवन तो उन्होंने ही दिया लेकिन लिखा, ''तुम्हारी परमार्थ परायणता ने बेटी गायत्री की जान बचायी।'' प्राण दान देने वाले वे स्वयं थे, पर श्रेय किसी को भी दे देते थे। ❀

हम सूर्य में व अखण्ड दीप में रहेंगे

1987 नवम्बर की बात है। मैं टोली से लौटा था। जब गुरुदेव से मिलने गया, तो गुरुदेव ने कहा, ''बेटा, मैं शुकदेव हूँ।'' मैं चुप रहा और उनके वाक्य पर विचार करता रहा। रात में भी वही विचार चलता रहा। प्रातःकाल उपासना के समय प्रेरणा मिली कि गायत्री का सूर्योपस्थान पढ़ो। मैंने उसे पढ़ा। उसमें लिखा है, ''ऋषि शुकदेव जी कहते हैं, हमारी सारी साधनायें पूरी हूई। अब हम सूर्य में व्याप्त होकर कार्य करेंगे।'' अगले दिन मैंने गुरुदेव को संस्कृत का एक श्लोक सुनाया। 'तस्मात् योग समास्थाय....' जब मैंने यह श्लोक सुनाया तो गुरुजी ने कहा, ''बेटा कहाँ पढ़ा है?'' मैंने गुरुदेव को बता दिया कि 'गायत्री का सूर्योपस्थान' पुस्तक में पढ़ा है। तब गुरुजी कहने लगे, ''बेटा, जैसे शुकदेव जी ने पैदा होने पर माँ का स्तनपान भी नहीं किया और तपस्या करने लगे वैसे ही बेटा हम भी तपस्या में लग गये हैं और उसी रूप में कार्य कर रहे हैं।''

एक दिन पूज्यवर ने कहा, ''शरीर छोड़ने के बाद क्षण भर के लिये हम निराकार हो जायेंगे, फिर उसी अखण्ड दीप की ज्वलंत लौ में समाहित हो जायेंगे, वही मेरी प्रतिमा होगी।''

इसी बात को वर्ष 1988, जनवरी की अखण्ड ज्योति में पृष्ठ-28 पर उन्होंने लिखा भी, ''बदन बदलने के समय में अब बहुत देर नहीं है।...परिजन हम लोगों का संयुक्त जीवन अखण्ड दीपक का प्रतीक मानकर उसे आत्म सत्ता की साकार प्रतिमा मानते रहें।... शरीर परिवर्तन की वेला आते ही यों तो हमें साकार से निराकार होना पड़ेगा, पर क्षण भर में उस स्थिति से अपने को उबार लेंगे और दृश्यमान प्रतीक के रूप में अखण्ड दीपक की ज्वलंत ज्योति में समा जायेंगे।''''शरीरों के निष्प्राण होने के बाद, जो चर्म चक्षुओं से हमें देखना चाहेंगे, वे इसी अखण्ड ज्योति की जलती लौ में हमें देख सकेंगे। भविष्य में दोनों की सत्ता एक में विलीन हो जायेगी और उसे तेल-बाती की पृथक सत्ताओं के एक ही लौ में समाविष्ट होने की तरह अद्वैत रूप में गंगा-यमुना के संगम रूप में देखा जा सकेगा।''

आगे वे लिखते हैं, ''अभी हम लोगों के शरीर शान्तिकुञ्ज में रहते हैं। पीछे वे इस परिकर के कण-कण में समाये हुए रहेंगे। इसकी अनुभूति निवासियों और आगंतुकों को समान रूप से होती रहेगी।''

अंतिम दर्शन

डॉ.गायत्री शर्मा बताती हैं कि मई 1990 में ब्रह्मदीप यज्ञों की श्रृंखला में लखनऊ में ब्रह्मदीप यज्ञ के एक संयोजक मेजर खरे दूसरे श्री त्रिवेदी जी के अतिरिक्त हमें भी संयोजन का सौभाग्य मिला था। प्रचार-प्रसार से लेकर समयदानियों के नियोजन की भी जिम्मेदारी थी। परन्तु मन परम पूज्य गुरुदेव पर ही लगा रहता था। 1 जून को न जाने क्या हुआ, मुझे गुरुदेव से मिलने की तड़प सी उठने लगी, कुछ बेचैनी सी होने लगी। हमने श्री अरविन्द निगम जी से कहा कि हमें शान्तिकुञ्ज जाना है, हम रात्रि में जाकर गुरुदेव के दर्शन करके अगले दिन आ जायेंगे। उन्होंने कहा, ''बिना आरक्षण के आप कैसे जायेंगी?'' हमने कहा, ''कैसे भी हो, हमें जाना है, मन में ऐसी प्रेरणा आ रही है जैसे गुरुदेव बुला रहे हैं।'' हम स्टेशन पहुँचे, टिकिट ली और हमें रिजर्वेशन भी मिल गया। हम शान्तिकुञ्ज आये, गायत्री जयंती के कार्यक्रम के बाद माताजी का प्रणाम हुआ

और दोपहर तक यह घोषणा हो गई कि परम पूज्य गुरुदेव ने शरीर छोड़ दिया है। हमारे दु:ख की सीमा नहीं थी, जब उनके अंतिम दर्शन किये, उन्हें प्रणाम किया तो इस बात का रहस्योद्‌घाटन हुआ कि क्यों अचानक ही गुरुवर से मिलने की तीव्र की इच्छा होने लगी थी। उन्होंने स्वयं खींचकर हमें अपने पास बुला लिया था और अपने पार्थिव शरीर के अंतिम दर्शनों की अभिलाषा पूरी की थी। उस गायत्री जयंती पर्व पर अनेकों परिजन दूर-दूर से हमारी ही तरह खिंचे चले आये थे और यही कह रहे थे कि गुरुदेव ने ही हमें खींचकर बुलाया है। (ज्ञातव्य है कि उन दिनों पूज्य गुरुदेव ने बहुत से परिजनों को स्वप्न के द्वारा और ध्यान में आकर विशेष प्रेरणाएँ भी दीं, किन्हीं-किन्हीं को तो अपना शरीर छोड़ देने का स्पष्ट आभास भी कराया।) ❀

डॉ. अमल कुमार दत्ता

(डॉ. अमल कुमार दत्ता एवं श्रीमती श्रीपर्णा दत्ता, पूज्यवर के निकटतम शिष्यों में से हैं। वे 1960 में मथुरा में पूज्य गुरुदेव के सम्पर्क में आये। उसके बाद वे लगातार उनके संपर्क में बने रहे। 1984 में पूज्य गुरुदेव के कहने पर स्थाई रूप से शान्तिकुञ्ज आ गये।)

डॉ. अमल कुमार दत्ता जी के पास इतने संस्मरण हैं कि उनकी ढेरों डायरियाँ भरी पड़ी हैं। वे कहते हैं, ''गुरुजी-माताजी की यादें, उनका प्यार ही हमारे जीवन की असल पूँजी है।'' डॉ. दत्ता जी के पास जब भी आप बैठें वे आपको कोई न कोई संस्मरण अवश्य सुनायेंगे। आप किसी भी विषय पर चर्चा करें, उनके संस्मरण कोष में उससे संबंधित निज का या अन्य किन्हीं परिजन से जुड़ा कोई न कोई संस्मरण अवश्य होगा।

गुरुजी-माताजी से परिचय

वे बताते हैं कि 1960 में, मैं पिताजी के साथ मथुरा गया, तब मैं पहली बार माताजी से मिला था। उस समय गुरुजी अज्ञातवास में थे। उस समय तक मैं गुरुजी का साहित्य पढ़ने लगा था और उनसे बहुत प्रभावित था। मैंने माताजी के चरण स्पर्श किये और पूछा, ''गुरुजी कैसे लिखते हैं ?'' माताजी बोलीं, ''बहुत तेज लिखते हैं और कलम उठाते ही नहीं।'' मैंने पूछा, ''क्या वे भी मुझे आप की ही तरह प्यार करेंगे ?'' माताजी बोलीं, ''मुझसे भी अधिक।'' फिर माताजी ने मुझे गायत्री मंत्र सुनाया, अखण्ड दीपक दिखाया और कहा, ''खाना खाओ।''

पिताजी ने कहा ''यहाँ, हमारे रिश्तेदार हैं, खाना वहीं खायेंगे।'' माताजी ने बड़े अधिकार से कहा, ''खाना रिश्तेदार के घर नहीं, अपने घर खाना चाहिए।'' फिर हम लोगों ने वहीं खाना भी खाया। यह थी मेरी, माताजी से पहली मुलाकात और गायत्री परिवार में आगमन। ❁

14 जून 1961 को मैं पहली बार गुरुजी से मिला। वह दिन मुझे आज भी याद है। हम 10-12 लोग खाना खा रहे थे। माताजी ने गुरुजी से कुछ कहा। गुरुजी हमारे पास आये और बोले,''अमल कुमार कौन है ?'' मैं घबरा कर खड़ा हो गया। गुरुजी बोले,''बैठो-बैठो ! खाना खाओ। खाकर तपोभूमि में मेरी प्रतीक्षा करना। मैं पूजा करके आता हूँ। तुमसे बहुत बातें करनी हैं।'' मुझे खुशी, आश्चर्य और उत्कंठा एक साथ होने लगी। उस दिन गुरुजी ने मेरे साथ बहुत सी बातें कीं। साधना संबंधी, भविष्य संबंधी। हम साथ-साथ घूमते रहे, कभी रुकते, कभी चलते हुए गुरुजी बोलते रहे, मैं सुनता रहा। उस दिन मुझे विश्वास हो गया कि गुरुजी ने मुझे अपना बना लिया और मैं उनका हो गया। 27 जुलाई1961 गुरुपूर्णिमा के दिन मैंने गुरुजी से दीक्षा ली। ❁

मैं जब नया-नया जुड़ा था, तब गुरुजी को बड़ी बारीकी से देखता था। उनका साहित्य भी खूब पढ़ता था, और जाँचता रहता था कि जो कुछ वे लिखते हैं, सचमुच अपनाते भी हैं।

मैंने देखा, गुरुजी कभी चमड़ा उपयोग नहीं करते थे। केवल जूते में ही नहीं, होलडॉल के बैल्ट में भी नहीं। रेल में कभी धक्का देकर नहीं चढ़ते थे। सबसे बड़ी बात हर व्यक्ति यही सोचता रहा कि गुरुजी मुझे ही सबसे ज्यादा प्यार करते हैं। वे कहते थे, ''मैं अधूरा प्यार नहीं जानता, मेरा हर प्यार पूरा ही रहता है।'' मैं उनसे बहुत प्रश्न पूछता था। बच्चों के जैसे जिज्ञासा रखता और वे बड़े ही सरल ढंग से मेरे प्रश्नों का उत्तर विद्वत्ता से नहीं, बड़े प्यार से, उपयोगिता तथा आदर्श की दिशा में प्रेरित करते हुए देते थे। ❁

एक दिन मैं घीया मण्डी पहुँचा, ''पूछा, माताजी कहाँ है ?'' एक बच्चे ने बताया कि माताजी, सतीश के लिये कोट का कपड़ा खरीदने नीचे गयी हैं। उसने दौड़कर माताजी को मेरे आने की सूचना भी दे दी। माताजी लौटते में मेरे लिये कचौड़ी और समोसा ले आयीं। मैंने कहा, ''माताजी, गुरुजी किताब में लिखते हैं कि यह नहीं खाना चाहिये।'' तो वे बोलीं, ''मैं तो नहीं लिखती,

खाना मेरा विषय है।'' उनका यह प्यार ही था, जिससे आदमी बहुत कुछ कर गुजरता है।

मेरा लड़कपन

जब मैं पहले-पहल माताजी से मिला तो उनका स्वरूप एक साधारण गृहस्थ महिला जैसा था। मैं कहता था, ''मैं परीक्षा में पास हो जाऊँ'' तो माताजी कहती थीं, ''मैं तेरी सिफारिश गुरुजी से कर दूँगी। तू भी गुरुजी से बोल देना।''

हम लोग लड़कपन भी खूब करते थे। एक बार हम मथुरा गये हुए थे। प्रो० रामचरण महेन्द्रजी भी आये हुए थे। वे उन दिनों अखण्ड ज्योति के सहसम्पादक थे। वे लौटने वाले थे, तो हम लोग मैं और चंद्रकांत (गुरुजी का भानजा) उनको स्टेशन पहुँचाने की जिद्द करने लगे। उन्होंने गुरुजी से मना करने के लिए कहा, तो गुरुजी बोले, ''ये ओकट-फोकट हैं, इनको जाने दो।'' रास्ते में ताँगा पलट गया पर हमें चोट कोई नहीं आई। हम लोगों को चाय पीने की बहुत आदत थी। रात में मथुरा में चाय कहीं मिली नहीं तो हम लोग दूध ले आये और सतीश भाई साहब से कहा कि कहीं से स्टोव, चाय-पत्ती और शक्कर का इंतजाम करो। हम लोग तलघर में ठहरे थे। सतीश भाई साहब, पं० लीलापत शर्मा जी के पास गये और बोले कि डॉ. साहब को चोट आ गई है, इसलिए सेक करना है और रसोई घर में जाकर स्टोव के साथ शक्कर और चायपत्ती भी ले आये। पंडित जी हमको देखने चले आये, फिर तो हमारी बड़ी मुसीबत हो गई। सतीश भाई साहब बोले, ''डॉ. अभी अभी सोया है, जगाओ मत।'' पंडित जी को असलियत पता चल गई। सुबह गुरुजी के पास शिकायत हुई, तो गुरुजी बोले, ''लीलापत, इनके रोज चाय पीने का इंतजाम कर दो।''

गुरुजी की आदर्शवादिता

सतीश भाई साहब की शादी जब पक्की हुई तब गुरुजी ने अपने परिवार के बड़े बुजुर्गों के लिए एक-एक रुपया लिया था। मुझे और श्रीपर्णा को एक-एक नोट लिफाफे में भेजा था। जब हम शादी में गये तो एक दिन गुरुजी गायत्री तपोभूमि में यज्ञशाला की दीवार से टिककर फर्श पर बैठे थे। हम लोग सामने बैठ गए। मैंने कहा, ''गुरुजी, एक प्रार्थना है।'' गुरुजी ने कहा, ''पहले मेरी सुन।'' 8-10 व्यक्ति जो शादी में आये थे, उनके साथ मैं भी बैठ गया। गुरुजी बोले, ''जो कोई व्यक्ति शादी के लिए कोई उपहार लाया हो उसे अपने

बकस में ही रखे रहे, नहीं तो मैं उसका उपहार नाले में फेंक दूँगा। अपने जीवन का ढंग मैं अपने लड़के की शादी में नहीं तोड़ूँगा, ठीक से याद रखना।'' इससे पहले कि गुरुजी मुझे ढूँढ़ते, मैं वहाँ से भाग लिया। मेरी बात बिना कहे ही मना जो हो गई थी।

गुरुजी की नियमितता

पैंतीस वर्षों में कभी भी गुरुजी-माताजी से मिलने में मुझे, कभी पाँच मिनट से अधिक देर नहीं लगी। गायत्री तपोभूमि में वे कभी भी घीया मण्डी से चलकर पूर्णाहुति में पहुँचने से नहीं चूके। ऐसा कभी नहीं हुआ कि मेरे पत्र का उत्तर नहीं आया हो। गुरुजी के पत्र लिखने का एक विशेष अंदाज था, माताजी पत्र पढ़तीं, और पत्र पढ़ते-पढ़ते में ही गुरुजी जवाब लिखते रहते। जो विशेष बात पूछी जाती, उसका जवाब वह अन्तिम दो-चार लाइनों में ही लिख देते। यहाँ माताजी का पत्र पढ़ना समाप्त होता, वहाँ गुरुजी का पत्र लिखना।

मैंने गुरुजी की पहली गोष्ठी, गायत्री तपोभूमि के हॉल में 14 जून 1961 में सुनी। उन्होंने कहा कि जो अगले 30 वर्ष तक मुझसे जुड़ा रहेगा उसके पूर्व जन्म में कुछ भी हो लेकिन फिर उसे किसी और चीज की आवश्यकता नहीं होगी। मैं जिस किसी के लिए जो कुछ भी कहता हूँ उसको सच होना ही होगा।

शक्ति संचार साधना की दीक्षा

सन् 1961 की ही बात है। गुरुजी तपोभूमि गेट के दायीं ओर के हॉल में बीस-पच्चीस लोगों की गोष्ठी ले रहे थे। गोष्ठी के बाद उन्होंने पाँच लोगों का नाम लिया और ''विशेष बात करनी है'', कहकर घीया मंडी बुलाया। उस दिन गुरुजी ने अखण्ड दीपक साधना कक्ष के सामने बैठकर हम पाँच व्यक्तियों को (श्री जानकी वल्लभ जोशी, कल्कत्ता का एक परिवार, मैं और एक व्यक्ति और थे।) शक्ति संचार साधना की दीक्षा दी। उन्होंने कहा ''मैं और मेरे गुरु रविवार और बृहस्पतिवार को सूर्योदय के एक घण्टे पूर्व से एक घण्टे बाद तक तथा रात को नौ से साढ़े नौ बजे तक शक्ति का संचार करेंगे। किसी एक समय तुम लोग सिर्फ चुप बैठना। यदि इस शक्ति का सही उपयोग करोगे तो यह निरंतर मिलती रहेगी।'' मैं यह साधना आज भी लगभग नियमित करता हूँ।

एक दिन मैंने गुरुजी से पूछा, ''गुरुजी, मुझे तो कुछ भी मालूम नहीं पड़ता। लगभग 25 वर्ष तो हो गये साधना करते हुए।'' गुरुजी बोले ''बेटा, विटामिन सी खाने से कुछ फायदा होता है?'' मैंने कहा, ''गुरुजी, यदि कमी होती है तो जरूर फायदा होता है।'' वे बोले ''फायदा मालूम पड़ता है क्या?'' मैंने कहा ''गोली क्या कर रही है यह तो मालूम नहीं पड़ता लेकिन तकलीफ दूर हो जाती है।'' गुरुजी ने कहा ''बेटा, यह अच्छा है कि तुझे कुछ मालूम नहीं पड़ता, जिस दिन मालूम पड़ने लगेगा उस दिन पगला जायेगा। ऐसे ही ठीक है।''

गुरुजी-माताजी, दादा गुरुजी का चित्र

माताजी ने अपना एक चित्र मुझे दिया जो आज भी मेरे पास है। गुरुजी का एक चित्र पं० लीलापत शर्मा जी ने मुझे दिया था। जिसकी कापी माताजी अपने पूजा कक्ष में रखती थी और उन्होंने बताया था कि आरम्भिक दिनों में गुरुजी जब अज्ञातवास में होते तो मैं इस चित्र से उनसे सम्पर्क स्थापित कर लेती थी, और गायत्री परिवार की समस्याओं का हल भी पूछ लेती थी। ❁

1965 में मेरा बड़ा बेटा अरविंद बीमार पड़ा। मैं उन दिनों कानपुर में था। मेरी पत्नी श्रीपर्णा लखनऊ में थी। उसने गुरुजी को पत्र लिखा। गुरुजी ने मुझे पत्र लिख कर लखनऊ बुलाया, कि वे किसी कार्यवश लखनऊ आ रहे हैं और हमारे ही घर पर रुकेंगे। जब वे घर आये तो मुझसे बोले, ''मैं तेरे लिये एक चीज लाया हूँ।'' उन्होंने होलडॉल खोला और दादा गुरुजी का एक चित्र मुझे दिया। जो आज भी मेरे पास है। मैंने उस चित्र को पाते ही गुरुजी को प्रणाम करके वायदा किया कि मैं इनसे (दादा गुरुजी से) कभी कुछ माँगूगा नहीं।

मैंने गुरुजी से पूछा कि आपने यह चित्र कैसे उतारा? क्या आपके पास कैमरा था? गुरुजी ने कहा, ''नहीं, जिस गुरु पूर्णिमा में मुझे गुरुजी के दर्शन करने थे, सन् 1960 में, उस समय हम सात शिष्य वहाँ पहुँचे थे।'' मैंने पूछा ये कौन हैं? तब उन्होंने कहा कि भारत से हम दो लोग थे। एक दक्षिण भारत में हैं। उन्हीं ने अपने कैमरे से ये चित्र लिये थे। जिसकी कापी उन्होंने मुझे भेजी। मैंने पूछा, ''बाकी पाँच कहाँ हैं?'' गुरुजी ने कहा, ''ये पाँचों विदेश में हैं और अपने-अपने ढंग से काम कर रहे हैं।'' ❁

विशिष्ट चर्चा

एक बार मैंने गुरुजी से पूछा, ''गुरुजी, शरीर छोड़ने के बाद आप कहाँ जायेंगे ? क्या करेंगे ?'' यह सन् 1963-64 की बात होगी। गुरुजी बोले, ''मैं अपने गुरु का स्थान हिमालय में ले लूँगा।'' मैंने पूछा, ''उनका क्या होगा ?'' वे बोले, ''वे अपने गुरु का स्थान ले लेंगे।'' मैंने कहा, ''फिर उनका क्या होगा ?'' तो वे बोले, ''वे विश्राम करेंगे।'' मैंने पूछा, ''उनका विश्राम कैसा होता है ? क्या सोयेंगे, कितना सोयेंगे, क्या सोते रहेंगे ?'' गुरुजी ने कहा, ''नहीं, उनके विश्राम का मतलब होता है सूक्ष्म जगत् में तप। वे सूक्ष्म शरीर से कारण शरीर में अपनी तप शक्ति से ही पहुँचते हैं और जब-जब ईश्वरीय विधान को आवश्यकता होती है, वह इनका उपयोग एक ऋषि या अवतारी के रूप में सृष्टि संतुलन का उत्तरदायित्व सौंप कर करते हैं।'' ❀

मैंने पूछा, ''गुरुजी, हिमालय में कौन सा भाग सबसे अच्छा है ?'' गुरुजी बोले, ''हिमालय का सबसे अच्छा स्थान, हिमालय का हृदय है। हमारे गुरुजी उससे भी बहुत ऊपर रहते हैं। वे सूक्ष्म शरीर में हैं और स्थूल शरीर धारण कर सकते हैं। उनसे कोई प्रयास से नहीं मिल सकता। मैं भी अपने प्रयास से नहीं मिला। उनकी कृपा, इच्छा और काम का उद्देश्य ही उनसे मिलाता है। हिमालय का हृदय एक छोटा स्थान है। यह 10-12 किलोमीटर लम्बा और कुछ किलोमीटर चौड़ा है। यहाँ कोई नहीं पहुँच सकता। लोग हेलीकॉप्टर से भी सारी कोशिशें करके देख चुके हैं। यहाँ हमेशा सिद्ध पुरुष, ऋषि रहते हैं। सीधा रास्ता कठिन है। घूमकर जाना पड़ता है।''

गुरुजी की दिव्य दृष्टि

गुरुजी दिव्य दृष्टा थे, उन्हें भूत-भविष्य सबका ज्ञान था। इसका मैंने कई बार एहसास किया है। गायत्री तपोभूमि के दायीं ओर कक्ष में गुरुजी का प्रवचन चल रहा था। मैं भी सुन रहा था। पीछे से किसी ने एक चिट आगे बढ़ाई और सबसे आगे वाले ने गुरुजी को दी। प्रवचन बंद हो गया। गुरुजी ने सूचना दी कि रेडियो न्यूज आई है कि प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू का दिल के दौरे से स्वर्गवास हो गया है। जो बच्चे उपवास करना चाहें, सूचना दे दें। बाहर निकलते ही मैंने गुरुजी से पूछा, ''गुरुजी, क्या सुभाष चन्द्र बोस प्रकट हो जायेंगे

और प्रधानमंत्री बनेंगे?'' गुरुजी ने कहा, ''प्रधानमंत्री, लाल बहादुर शास्त्री बनेंगे।'' जबकि उस समय तक ऐसी न कोई सूचना थी, न सम्भावना। ❁

एक बार गुरुजी ग्वालियर में जब हमारे यहाँ ठहरे हुए थे, तब वे भोजन करते हुए बोले, ''अमलकुमार, तुझे एक मजेदार बात बताता हूँ।'' मैंने कहा, ''मजेदार बात! गुरुजी जरूर बताइये।'' वे बोले, ''लोग अब अपने घरों से सोना निकालेंगे। ज्यादा सोना पहनना समाज में सभ्यता का द्योतक नहीं रहेगा।'' उन दिनों में कोई महिला यदि सोना नहीं पहनती थी, शादी-ब्याह में तो विशेषकर, तो उसे गरीब घर की माना जाता था। हमें सुनकर आश्चर्य लगा, पर कुछ दिनों बाद चीन ने हमला किया और काफी मात्रा में सोना बाहर चला गया। आज की परिस्थितियों को भी देखें तो ज्यादा सोना पहनना रईसी तो हो सकता है पर आधुनिक सभ्यता नहीं रह गया है। ❁

जब भारत-चीन युद्ध हुआ था, तब चीन जीतता जा रहा था। श्री घनश्यामदास बिड़ला जी ने गुरुजी से पूछा, ''आचार्य जी, क्या करूँ? मैं अपना पैसा विदेश बैंक में स्थानांतरित कर दूँ क्या? चीन लगातार आगे बढ़ रहा है, भारत का क्या होगा?'' गुरुजी ने कहा, ''इसकी जरूरत नहीं, युद्ध 7 दिन में बंद हो जायेगा।'' और ऐसा ही हुआ। ❁

एक दिन मैं और गुरुजी इन्टर क्लास कोच में मथुरा से ग्वालियर जा रहे थे। गुरुजी ने मुझसे पूछा, ''अच्छा बता! पैंटन टैंक कैसे चलता है?'' मैंने कहा, ''गुरुजी, मुझे नहीं मालूम।'' गुरुजी ने कहा, ''उसमें सारा फायरिंग सिस्टम कम्प्यूटर का है। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान युद्ध में पाकिस्तानियों का गणित लड़खड़ा गया। इस कारण लाहौर से अमृतसर यानि स्वर्ण मंदिर में एक भी बम नहीं गिरा पाये। बेटे! इनका गणित हमेशा कमजोर होगा। इसी प्रकार चीन युद्ध में भी हिमालय के ऋषियों ने भारत की मदद की थी।'' ❁

सन् 1971 में जब गुरुजी अज्ञातवास के लिए जाने वाले थे, तो विदाई में बहुत भीड़ थी। मैं उनके पास गया तो वे बड़ी प्रसन्न मुद्रा में बोले, ''देख! कितने डॉक्टर हैं।'' वे प्यार से सदा मुझे डॉक्टर बुलाते थे। मैं रो पड़ा कि आगे कौन मुझे इस नाम से बुलायेगा। गुरुजी तुरंत मेरे मनोभाव समझ गये और बोले, ''मैं तुझे बिना सिविल सर्जन बनाये मरूँगा नहीं।'' ❁

गुरुजी मथुरा छोड़ने के पहले अपना सब कुछ बाँट गये। गुरुजी ने केवल धन सम्पत्ति ही नहीं बाँटी बल्कि अपना शरीर, मन, बुद्धि व प्रतिभा भी भगवान के काम में लगाई। जब गुरुजी हरिद्वर में रहे तब सतीश भाई साहब ढ़ाई सौ से पाँच सौ रुपया प्रति माह भेजते थे। गुरुजी कहते थे कि बेटा अपने बाप को पैसा नहीं देगा, सेवा नहीं करेगा तो अगले जनम में बैल बनेगा। यही बात उन्होंने हमारे बच्चों से भी कही थी। मेरे बच्चे मुझे नियमित रूप से पैसा भेजते हैं। मैं कहता हूँ, ''मुझे आवश्यकता नहीं है।'' तो वे कहते हैं, ''पिताजी, हमें बैल नहीं बनना है।'' ❀

गुरुजी अपने खर्चे के विषय में बहुत कड़क थे। उन्होंने मिशन के पैसे को अपने निजी खर्च के लिए किसी भी सूरत में इस्तेमाल नहीं किया। हमें याद है जब डॉक्टर प्रणव जी का बी.एच.ई.एल. में एक्सीडेंट हुआ था तो हरिद्वार से दिल्ली ले जाने में केवल इसीलिए देर हुई थी कि सतीश भाई साहब को रात में पैसे लेकर मथुरा से आना था। किसी भी स्थिति में गुरुजी ने पोस्ट ऑफिस या बुक स्टॉल से पैसे लेना स्वीकार नहीं किया था।

संगीत प्रशिक्षण

मथुरा में एक बार गुरुजी को संगीत सीखने का विचार आया। उन्होंने एक संगीत टीचर भी नियुक्त कर लिया और सबसे कहा कि सब लोग संगीत सीखेंगे। माताजी, गुरुजी और बाकी सब लोग भी संगीत की कक्षा में बैठने लगे। माताजी ने हारमोनियम पर स्वर लिख लिये और रीड दबा-दबाकर सीखने लगीं। गुरुजी बोले, ''मैं भी सीखूँगा'' और नियमित रूप से कक्षा में आने लगे। गुरुजी बड़ी गहराई से सीखने लगे। मास्टरजी को पूछते, ''ऐसा क्यों, ऐसा क्यों नहीं? इससे क्या होगा? ऊँचा क्यों, नीचा क्यों नहीं?'' मास्टर साहब सिखाते रहे। सात दिन बाद उन्होंने आना बंद कर दिया। गुरुजी ने कहा, ''पता लगाओ, मास्टर साहब बीमार तो नहीं हो गये?'' एक व्यक्ति को घर भेजा। पत्नी ने कहा, ''मास्टर साहब बाहर गये हुए हैं।'' एक दिन मास्टर जी गुरुजी को बाजार में मिल गये। गुरुजी ने उन्हें नमस्कार किया और बोले, ''मास्टर साहब, आपका स्वास्थ्य कैसा है? आप बाहर गये, लौटे, तो आये क्यों नहीं? मास्टर जी ने हाथ जोड़े और बोले,''आचार्य जी, आपके पास बहुत कलायें हैं। मेरे पास तो एक ही कला है, वो भी थोड़ी सी। आप मेरे पीछे क्यों पड़ गये?

मुझे दाल-रोटी खाने दीजिए। आपको सिखाऊँगा, तो मैं ही भूल जाऊँगा। मुझको आप कृपा करके माफ कर दीजिए।''

ऐसे ही ब्रह्मवर्चस में जितेन्द्र तिवारी, अशोक तिवारी और मेरे साथ हुआ। हम लोगों ने गुरुजी के कहने पर बड़ी ईमानदारी से ढपली सीखना शुरू किया। क्योंकि गुरुजी ने कहा था कि तुम एक साल तक ढपली सीखो और इसके बाद भी तुम्हें न आये तो तुम्हारा कोई दोष नहीं, मेरी ही किस्मत खराब होगी। हम लोग सचमुच सीखते रहे। पहली लाइन में बैठते तो आगे वालों की ताल बिगड़ने लगी। शास्त्री जी ने बीच की लाइन में बिठा दिया। तब आगे वाले और पीछे वाले दोनों की ताल बिगड़ने लगी। फिर उन्होंने सबसे पीछे बिठाल दिया। अब पीछे वालों की ताल बिगड़ने लगी। हारकर एक दिन हाथ जोड़कर बोले, आप लोग ब्रह्मवर्चस में वैज्ञानिक का ही काम कीजिए। (लेकिन गुरुजी को संगीत का भी बहुत अच्छा ज्ञान था।)

गुरुजी का आश्वासन

एक बार गुरुजी लखनऊ आये हुए थे। हमारे घर पर ही रुके थे। जब गुरुजी मथुरा के लिये लौटने लगे तो स्टेशन पर बातचीत के दौरान मैंने गुरुजी से कहा, ''गुरुजी, इस जन्म में तो मैं आपको छोड़ूँगा नहीं, यदि पागल नहीं हो गया तो, पर आगे मैं आपको कैसे पहचानूँगा ? पहचानूँगा भी या नहीं, अखण्ड ज्योति का सदस्य बनूँगा या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता।''

गुरुजी ने कहा, ''तू कभी पागल नहीं होगा और जहाँ तक मेरे साथ का सवाल है, मैं हमेशा तेरे साथ हूँ। किसी न किसी रूप में हमेशा तुम्हारे साथ रहूँगा। कभी अभिभावक के रूप में तो कभी मित्र तो कभी यूँ ही।'' मैंने कहा, ''गुरुजी, कब तक ?'' गुरुजी बोले, ''जब तक तू पूर्णता की स्थिति प्राप्त नहीं कर लेगा।'' उनकी बात सुनकर मैं भाव विभोर हो गया। मन में तो आया कि चरणों में लोट जाऊँ, पर ऐसा कर नहीं सकता था, क्योंकि हम स्टेशन पर खड़े थे। मैंने मन ही मन गुरु जी को प्रणाम किया और कृतज्ञता व्यक्त की। ०००

एक दिन दोपहर को दो बजे मैं गुरुजी के पास गया। गुरुजी अकेले बैठे थे। मैंने पूछा, ''गुरुजी, आपकी तबियत ठीक है ? गुरुजी ने कहा, ''हाँ।'' मैंने कहा, ''गुरुजी, मैं डॉक्टर हूँ, आपकी आँखें लाल हैं।'' गुरुजी बोले, ''हाँ बेटा ! मैं कुछ दिन से सो नहीं रहा हूँ, और तुम लोग सुधर नहीं रहे हो। इसीसे

मैं बहुत चिन्तित हूँ। लेकिन मैंने भी सोच लिया है कि कितने ही जन्म क्यों नहीं लगें, पर मैं भी तुम लोगों को छोड़ूँगा नहीं। बस इस होड़ में ही आँखें लाल हैं।'' मेरे पास कृतज्ञता के लिये कुछ नहीं था, सिवाय हृदय पर से न मिटने वाले एक सन्देश के। ❀

एक दिन उन्होंने कहा, ''बेटा! प्रारब्ध तो बदला नहीं जा सकता। कष्ट तो राम, कृष्ण, शंकराचार्य, बुद्ध, रामकृष्ण परमहंस सबको हुआ, पर मैं अभिभावक की भूमिका जरूर निभाऊँगा। चोट लगेगी, तो सबसे पहले पहुँचूँगा। अच्छे से अच्छा इलाज कराऊँगा। मेरे पास जो तप की पूँजी है, समय पर उसका उपयोग करूँगा, पर याद रखना हम बदला नहीं चाहते, पर भगवान भी न्याय नहीं छोड़ता। अगर तुम अपने कष्ट, दु:ख और हानि की कीमत पर किसी का चिंतन, चरित्र और व्यवहार नहीं उभारोगे, तब तक मेरे उस तप का पटाना नहीं होगा और आगे तुम्हें भुगतना ही पड़ेगा।'' ❀

शान्तिकुञ्ज में एक गोष्ठी में गुरुजी ने कहा था, ''बच्चो! जो तुम लोग शान्तिकुञ्ज के स्थायी सदस्य हो, हमारे बच्चे हो। हम किसी से बिछुड़ने के लिए कभी नहीं मिलते हैं और यदि प्यार करते हैं तो फिर पूरा ही प्यार करते हैं। हम तुम लोगों को समाज के लिए लाये हैं। तुम्हारे संस्कार अच्छे बनें, इसीलिए हम तुम्हें बाहर का अन्न नहीं खिलायेंगे। उसकी व्यवस्था तुम्हारे गुरु, तुम्हारे पिता ने कर रखी है। यह तुम्हारा हक है। जब तक यहाँ रहोगे मोटा अन्न, मोटा वस्त्र हमारा उत्तरदायित्व रहेगा। क्योंकि, तुम कमाओगे नहीं। जीवनभर हमारे बच्चे रहोगे। फिर उन्होंने कहा,

''आटे का घाटा नहीं घी के नहीं दर्शन, बने रहो तुम बर्सन।''

यह उनका हम लोगों के लिये सादगी भरा जीवन जीने का शिक्षण था।

गुरुजी की पीड़ा

उन्होंने मुझसे कहा था, कि यदि तुम मुझे स्वप्न में देखो तो वह निरुद्देश्य नहीं होगा। गुरुजी के शरीर छोड़ने के काफी समय बाद एक दिन मैंने उनको स्वप्न में देखा। मैंने देखा, ''वे एक कमरे में बैठे हैं। मैं उनके पास गया और प्रणाम किया। गुरुजी बहुत दुबले थे और शरीर छोड़ने की तैयारी में थे। उन्होंने बड़े शांत भाव से कहा कि अब मैं कारण शरीर में जाने वाला हूँ। मैंने कहा, आप बड़े प्रसन्न और स्वस्थ दिख रहे हैं पर इतने दुबले क्यों हैं ? वे बोले,

''मेरा यह शरीर तुम लोगों के चरित्र, चिंतन और व्यवहार से बना है और तुम लोग इस मामले में दुबले पड़ रहे हो, आगे देखता हूँ?''

बड़ा विलक्षण प्यार था उनका।

लोकेश नाम का एक कार्यकर्ता जिसको गुरुजी ने देश-विदेश के कई स्थानों पर भेजा। उसे अहंकार हो गया था। यह सन् 1986 की बात है। जब उसकी शिकायतें कुछ ज्यादा ही आने लगीं तो उसे निकाला जाना घोषित कर दिया गया। उसने जबलपुर कोर्ट में केस चलाया। गुरुजी उन दिनों बाहर कहीं जाते नहीं थे। सहज ही चर्चा में उनसे पूछा गया कि गुरुजी आप जबलपुर जायेंगे क्या? जायेंगे तो कहाँ ठहरेंगे? इस पर गुरुजी ने कहा, ''मैं तो कहीं जाता नहीं। लेकिन यदि जाना ही पड़ा तो जबलपुर में, मैं अपने बेटे लोकेश के घर ही ठहरूँगा। उसने कई वर्षों तक मेरी बहुत प्रशंसा की है, थोड़ी बुराई कर दी तो क्या हर्ज है?'' ❀

ऐसे ही ब्रह्मवर्चस के एक कार्यकर्ता की ड्यूटी अखण्ड दीपक के पास सुरक्षा में थी। उसने वहाँ पर गड़बड़ी करनी शुरू कर दी। रसीद काटने में भी उसने कुछ होशियारी की। किंतु महाकाल से कुछ छिपा रह सकता है क्या? उसकी चोरी पकड़ी गई। माताजी के पास शिकायत पहुँची। माताजी ने उसे समझाया व आईंदा ऐसा न करने के लिये कहा। उस कार्यकर्ता ने माफी माँगी, उसे माफ भी कर दिया गया। गलती की है, तो उसके लिये क्षमा ही पर्याप्त नहीं होती, उसके लिये प्रायश्चित भी करना पड़ता है। उन कार्यकर्ता ने तो गुरुजी-माताजी से प्रायश्चित के विषय में कुछ पूछा नहीं, परंतु कुछ दिनों बाद गुरुदेव ने स्वयं एक कार्यकर्ता के द्वारा उनके लिये संदेश भिजवाया कि ''उससे कहो, वह तीन-चार अनुष्ठान अवश्य कर ले, अन्यथा भविष्य में इस पाप का दण्ड रोग-शोक आदि के रूप में बहुत भयंकर रूप से भुगतना पड़ेगा। समाज का पैसा हजम नहीं होगा, कोढ़ बनकर फूटेगा।'' यह उनका प्यार ही था कि गलतियों को क्षमा भी करते थे और भविष्य की भी चिंता करते थे। ❀

मेरा छोटा भाई यतीन्द्र दत्ता गुरुजी से अक्सर मिलता रहता था। एक दिन हम दोनों गुरुजी के पास घीयामंडी गये। यतीन्द्र ने गुरुजी से कहा- ''गुरुजी, मेरे तीन प्रश्न हैं। मैं विदेश जाना चाहता हूँ। वीजा और पैसे का इन्तजाम कैसे होगा? और वहाँ भी आप मेरी रक्षा करना।'' गुरुजी बोले,

''पहले तू अपना चौथा प्रश्न भी बोल दे'' यतीन्द्र ने पॉकेट से चिट निकाली और देखकर बोला, ''हाँ गुरुजी, यह चौथा प्रश्न भी है।'' फिर गुरुजी बोले, ''तू जल्दी विदेश जायेगा। अच्छा बता! तेरे पास पैसे कितने हैं?'' यतीन्द्र बोला, डेढ़-दो हजार रुपये हैं।'' गुरुजी एक कहानी सुनाने लगे, ''एक जाट मेले में खाट बेचने आया।'' गुरुजी खाट पर ही बैठे थे, और हाथ से दिखाकर बोले,

''आजू नहीं है-बाजू नहीं है, बीच का नहीं है झंगड़-झोला,
तीन नहीं हैं पाये और एक पाया ऊँचा करके बोला-खटिया ले लो भाई।

सो पंद्रह सौ रुपये में तू अमेरिका जायेगा?'' यतीन्द्र बोला, ''गुरुजी, इसीलिए तो आपके पास आया हूँ।'' गुरुजी बोले, ''अच्छा बेटा, मैं सब ठीक कर दूँगा। तेरे जाने का टिकिट, वीजा, स्कालरशिप और अच्छी नौकरी सब कर दूँगा। अब तू एक काम कर, माताजी के पास जाकर खाना खा।'' ❁

ऋषि मुझसे मिलने आते हैं

एक दिन जब मैं, डॉ. प्रणव पण्ड्या जी, श्री वीरेश्वर उपाध्याय जी, श्री जितेन्द्र जी और दो तीन और लोग गुरुजी से दोपहर में लेखन करने का शिक्षण ले रहे थे। गुरुजी ने कहा, ''कल से तुम लोग बाहर बैठना। टीन शेड में परदा लगा देंगे। मुझसे मिलने कुछ बड़े लोग आयेंगे।''

मैंने उपाध्याय जी से पूछा कि कौन आ रहा है? उन्होंने जवाब दिया, ''मुझे पता नहीं।''

दूसरे दिन स्वयं गुरुदेव साधना कक्ष में आए और कहा कि कल जो मैंने कहा था कि बड़े लोग मुझसे मिलने आयेंगे, तब मेरा मतलब किसी मिनिस्टर से नहीं था। ऋषि लोग मुझसे मिलने आते हैं।

गुरुजी जीवन के व्यवहारिक सूत्र बड़ी सरलता से समझा देते थे।

वे कहते थे यदि तुम्हें कोई बड़ी चीज खरीदनी है, तो उसमें प्रेम जोड़ देना। जैसे- रेडियो, घड़ी, फर्नीचर लेना हो तो बच्चों के जन्मदिन पर, पत्नी के जन्मदिन या विवाह दिन से जोड़कर आगे-पीछे खरीदना चाहिए। किसी के घर ठहरो या उपकार लो, तो शालीनता का पूरा ध्यान रखना चाहिए। मिठाई का डिब्बा ले आये या पिक्चर दिखा दिया, यह काफी नहीं है। या तो सीधे पैसे दो या यह पता लगाकर कि उनकी आवश्यकता की चीज क्या है, वह लाकर दो। ❁

एक दिन मैं और गुरुजी पैदल ही गायत्री तपोभूमि से घीयामण्डी जा रहे थे। सामने से एक शवयात्रा आई। गुरुजी बोले, ''जब कभी शवयात्रा देखो तो उसके साथ 2-4 कदम चलना चाहिये'' और वे उसके साथ चलने के लिये मुड़ गये। हम कुछ दूर शवयात्रा के साथ चले। फिर हम लोग घीयामण्डी गये। ❀

तीस वर्ष में सन् 1960 से 1990 के बीच यह दूसरा समय था। जब गुरुजी मुझ पर नाराज़ हुए। एक नया लड़का था केशरवानी, हम लोगों ने उसे स्टॉल पर काम दिया। वह सबेरे से शाम तक बुक स्टॉल खुला रखता था। अखण्ड ज्योति के सदस्य भी बहुत संख्या में बनाता था। हमने सारी जिम्मेदारी उसको सौंप दी, पर वह जो सदस्य बनाता था, उसमें ऊपरी रसीद पर तो तीन सौ पचास रुपया लिखता था, यानि आजीवन और कार्बन के नीचे 40 रुपया। कुछ दिनों बाद वह काफी पैसे लेकर भाग गया। ब्रह्मवर्चस के बुद्धिजीवी कहलाने वाले हम सभी की गुरुजी के सामने पेशी हुई। गुरुजी बोले ''दत्ता! किसी आदमी का ऊपरी दिखावा या कार्य नहीं देखा जाता। जिम्मेदारी देने के पहले गहराई से व्यक्तित्व परखना चाहिए। इतना ही खैर है कि यह केशरवानी तुझे अपना चेला बनाकर नहीं ले गया।'' मैं सिर नीचा करके सुनता रहा। हमें अपनी भूल का अहसास हुआ। हम लोग केशरवानी पर जरा ज्यादा ही विश्वास करने लगे थे। ❀

देवास में गुरुजी कहीं जाने की तैयारी में थे। जब वे कार में बैठ गये तो हाथ का इशारा करके मुझे बुलाया और बोले, ''दत्ता! एक बात सुन। देख, जो व्यक्ति चार आदमियों को मेरे साथ खाना खाने बुलाये उसके यहाँ तीन जायेंगे, जो तीन को बुलाये उसके यहाँ दो और जो दो को बुलाये उसके यहाँ केवल मैं जाऊँगा। ऐसा ही हो, इसकी जिम्मेवारी तेरी है।'' ❀

एक बार गुरुजी कहीं से आकर ग्वालियर होते हुए मथुरा जा रहे थे। हमें प्रोग्राम मालूम था। प्रात: 3.00-4.00 बजे का समय था। प्लेटफार्म पर कुछ लोग गुरुजी से मिलने आ गये। गुरुजी वहीं पर एक कुर्सी पर बैठ गये। 5-6 लोग गुरुजी के लिए चाय लाये थे। सब लोग थर्मस के साथ एक-एक कप ही लाये थे। गुरुजी ने पूछा, ''तुम में से कोई दो कप लाया है क्या? कोई नहीं लाया। सब गुरुजी के लिए एक कप लाये हैं।'' फिर कहा, ''स्टॉल से एक

कप ले आओ, मैं तुम सबकी केतली से थोड़ी-थोड़ी चाय ले लेता हूँ, बाकी तुम लोग पियो।'' सबको अपनी गलती का एहसास हुआ कि एक कप नहीं दो कप तो लाना ही चाहिए था। गुरुजी अकेले पीते ऐसा कैसे सम्भव था? ❀

अध्यात्म क्षेत्र में कुण्डलिनी जागरण का बहुत महत्त्व है। एक दिन एक व्यक्ति गुरुजी के पास पहुँचा और बोला ''गुरुदेव, मेरी कुण्डलिनी जगा दीजिए।'' पूज्यवर ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा व एक क्षण रुक कर बोले, ''बेटा! गधा कितना वजन उठा लेता है।'' प्रश्नकर्ता कुछ समझ नहीं पाया। ''कुण्डलिनी जागरण से गधे का क्या ताल्लुक?'' गुरुजी की ओर हैरानी से देखता रहा।

फिर गुरुजी ने कहा-''और बकरा।'' वह व्यक्ति गधे व बकरे के वजन उठाने की क्षमता की तुलना करने लगा। बोला, ''बकरे से तो गधा दस गुना अधिक वजन ढो सकता है।'' गुरुदेव ने आगे कहा, ''बेटे! अभी तो तू बकरे से भी छोटा है।'' अब स्थिति स्पष्ट थी कि पात्रता के विकास से ही प्रतिभा प्राप्त होती है। अन्यथा बिना परिश्रम की शक्ति अपने ही विनाश का कारण बनती है। ❀

एक दिन एक परिवार गुरुजी के पास मिलने गया। पूज्यवर उन दिनों प्रत्येक व्यक्ति से, अलग-अलग कुशल क्षेम पूछते थे। उन्होंने सभी से पूछा। सबने अपनी-अपनी बात बताई पर जब बहू की बारी आई तो उसने कहा, ''अकेले में बताऊँगी गुरुजी।'' गुरुजी बोले, ''अच्छा बेटा! मैं तुझसे अकेले में बात करूँगा।'' सभी परिवार के सदस्य गुरुजी से विदा लेकर नीचे उतर गये। तब उन्होंने बहू से पूछा, ''बता बेटा! क्या बात है?'' बहू ने कहा, ''गुरुजी, मेरी सास बहुत लड़ती है।''

गुरुजी ने कहा, ''बेटी! मैं तुझे एक मंत्र देता हूँ। अब कभी लड़ाई नहीं होगी।'' फिर जोर से कहा, ''अपनी सास की ''हाँ'' में ''हाँ'' मिलाया कर।'' इस प्रकार पारिवारिक विग्रह को टालने का कितना सरल समाधान दे दिया। ❀

गुरुजी पल भर में सबको अपना बना लेते थे।

यह उनकी जबरदस्त कला थी। काम के व्यक्ति को वे मीलों दूर से भी पहचान लेते थे। गुरुजी के कार्यक्रमों की श्रृंखला चल रही थी। वे अशोकनगर से होकर आगे किसी प्रोग्राम में जाने वाले थे। हमने गुरुजी से कहा, ''गुरुजी! आप बस अपना पाँच मिनट अशोकनगर में दे देना।'' गुरुजी ने कहा, ''पाँच

मिनट में तू क्या कर लेगा?'' हमने कहा ''गुरुजी! हम मंच की तैयारी रखे रहेंगे। जनता को एकत्र भी कर लेंगे। आप बस पाँच मिनट में उद्‌बोधन देकर निकल जाना।'' गुरुजी बोले, ''लोग-बाग पैर छूने के लिये दौड़ेंगे। पाँच-दस मिनट तो इसी में निकल जाएगा।'' मैंने कहा, ''गुरुजी! मैं विश्वास दिलाता हूँ, कोई आपके पाँव न छुए, हम ऐसी व्यवस्था करके रखेंगे। जिससे आपका अधिक समय न लगे।''

हमने वैसी ही व्यवस्था करके रखी थी। एक विद्यालय के प्राचार्य जी ने हमसे कहा, ''मुझे तो आप सबके जूते चप्पल रखने की सेवा दे दो।'' हमने कहा, ''यह सेवा तो हम किसी भी बच्चे से करवा लेंगे। आप कोई दूसरी सेवा ले लो।'' पर उन्होंने आग्रह कर वही सेवा अपने लिए चुनी।

गुरुजी मंच पर आकर बैठ गये। इधर-उधर नजरें दौड़ाईं। उन प्राचार्य जी पर भी नज़र पड़ी। गुरुजी, ने मुझे बुलाया और उनकी ओर इशारा करके कहा, ''मुझे तो उस व्यक्ति के हाथ से पानी पीना है।'' मैं तुरंत उन प्राचार्य महोदय के पास जाकर बोला, ''गुरुजी आपके हाथ से पानी पीना चाहते हैं। जाइए, आप गुरुजी को पानी पिला दीजिए।'' उन्हें थोड़ा संकोच हुआ बोले, ''मेरे हाथ तो साफ नहीं हैं।'' मैंने कहा, ''पर गुरुजी तो आपके ही हाथ से पानी पीना चाहते हैं।'' वे भी उस सौभाग्य से वंचित नहीं रहना चाहते थे। उन्होंने ट्रे पकड़कर गुरुजी को पानी पिलाया।

गुरुजी ने वहाँ लोगों की श्रद्धा देखी, तो स्वयं ही आधे-पौन घण्टे का प्रवचन दिया। फिर बोले, ''अच्छा! करने दो सभी को प्रणाम।'' और चरण-स्पर्श करने की अनुमति भी दे दी। फिर उन्होंने पूछा, ''अच्छा! भोजन की व्यवस्था भी की है क्या?'' हमने कहा, ''जी गुरुजी, हमने सोचा, यदि आपका भोजन करने का मन होगा और अनुमति देंगे, तो हम भोजन भी करा देंगे। सो हमने भोजन की व्यवस्था भी पहले से ही बनाकर रखी है।'' इस प्रकार वे सूक्ष्म द्रष्टा अपने बच्चों की सभी इच्छाएँ पूरी करते रहे हैं। किसी को किसी भी प्रकार से निराश नहीं किया। ❀

मेरे एक मित्र मेहता जी रतलाम में डायरेक्टर एग्रीकल्चर थे। उनके पुत्र नरेश मेहता गुरुजी के पास आये और बोले, ''गुरुजी, मैंने दक्षिण भारतीय लड़की से शादी की है। बहुत अच्छे स्वभाव की है। मेरे साथ पढ़ती थी।

पिताजी उसे स्वीकार नहीं कर रहे हैं, क्या करूँ?'' गुरुजी बोले, ''तेरे पिताजी क्यों स्वीकार नहीं करते? तू जाकर बोल कि यदि तुम दक्षिण भारत की लड़की स्वीकार नहीं करते तो फिर माँ को दक्षिण भारतीय साड़ी क्यों पहनने देते हो? वहाँ के चावल और लौंग इलाइची भी खाना बंद कर दो।'' बहू को स्वीकृति मिल गई। ❀

एक दिन चिन्मय ने माताजी (अपनी नानी) से पूछा, ''आप कहती हैं कि नारी युग आयेगा, यह कैसे होगा? आज की नारी तो बहुत पिछड़ी है। माताजी बोलीं, ''बेटे, सवाल पिछड़ेपन का नहीं है। अच्छा काम सब कर सकते हैं और युग पढ़ाई से नहीं, अच्छाई से आता है। नारियों में ईर्ष्या और द्वेष चला जायेगा, तो वही उनकी योग्यता और प्रखरता होगी।'' ❀

गुरुजी में करुणा का केवल भाव ही नहीं था बल्कि उनके अंदर करुणा जीवंत थी।

उनके बड़े बेटे श्री ओमप्रकाश भाई साहब सन् 1960-61 से मेरे मित्र हैं। कभी-कभी वे गुरुजी के जीवन की बहुत पुरानी बातें भी सुनाते हैं। एक दिन उन्होंने गुरुजी की युवावस्था की एक घटना सुनाई। यमुना में बाढ़ आई हुई थी। बहुत पानी भरा था। जानवर भी खूब मरे थे। लोगों के घर बह गये थे। बहुत हानि हुई थी। गुरुजी रोज बाढ़ का पानी देखने जाते थे। एक दिन देखा कि एक छोटे से टापू जैसे ज़मीन के टुकड़े पर एक कुत्ता घिरा हुआ है। पता चला वह तीन दिन से वहाँ फँसा है। तीन दिन से उसने कुछ नहीं खाया है। सब उसके प्रति दयाभाव प्रकट कर रहे थे, पर उसे बचाये कौन? कौन जाता? कोई जाने को तैयार नहीं था। वह भी एक कुत्ते को बचाने! कोई आदमी तो है नहीं जो सीधी तरह नाव पर बैठ जाय।

उन्होंने बड़ी मुश्किल से तीन रुपये में एक डोंगी वाले को तैयार किया। डोंगी उसके चारों तरफ चक्कर लगाती रही पर कुत्ता ऐसा डरा हुआ था कि वह कैसे भी नाव पर आने को तैयार नहीं था। युवक श्रीराम रोटी दिखाते रहे पर वह नहीं आया। 2-3 चक्कर लगाने के बाद डोंगी वाले बोले, ''चलो भाई। मरने दो कुत्ते को।'' युवक श्रीराम बोले, ''एक चक्कर और।'' जैसे ही डोंगी उसके पास पहुँची कि युवक श्रीराम नाव से जमीन के उस टुकड़े पर कूद पड़े और बड़ी फुर्ती से उस कुत्ते को उठाकर वापस डोंगी में कूद पड़े। कुछ क्षण

डोंगी जोर से डगमगाई, पर श्रीराम कुत्ते के साथ डोंगी पर थे। डोंगी वाले ने युवक श्रीराम को बेहिसाब गाली दी ''बोला, खुद मरे तो मरे मुझे भी मारेगा।'' वह तब तक गाली देता रहा जब तक कि किनारे पर नहीं आ गया।

उन्होंने डोंगी वाले को 5 रुपये दिये फिर भी डोंगी वाले ने उतरते समय कुत्ते को एक ज़ोर की लात मारी और कुत्ता, कूँ-कूँ, कंऊँ-कंऊँ, करता हुआ एक तरफ को दौड़ गया। ऐसा था गुरुजी का बचपन। ❀

दूसरा प्रसंग उस समय का है, जब पूज्य गुरुदेव ने शरीर छोड़ दिया था। श्री ओमप्रकाश जी भाई साहब पुरानी बातें याद करके रोज लिख रहे थे। मैं प्रतिदिन त्रिपदा 5 में उनके पास जाता था। हम लोग चाय साथ ही पीते थे। एक दिन उन्होंने बताया, ''मेरे पास कल एक महिला आई और बोली आप गुरुजी के पुत्र हैं?'' मैंने कहा, ''हाँ।'' फिर वह बोली, ''मैं आपको कुछ बताना चाहती हूँ। आप मेरी बात सुनें। मैं आपका अहसान नहीं भूलूँगी।'' उसने बताया, ''आज से करीब 25 वर्ष पहले की बात है। मैं रेल में थर्ड क्लास डिब्बे में जा रही थी। मैं गेट के पास ही नीचे बैठी थी। मेरी आँख से आँसू बह रहे थे। एक वृद्ध व्यक्ति खिड़की के पास सिंगल सीट पर बैठा था।'' वह बोला, ''बहन यहाँ बैठ जाओ। तुम्हें हवा मिलेगी। पास में स्थान है। मैं, वहाँ चला जाऊँगा।'' मैं वहाँ बैठ गई। अगले स्टेशन पर वह पानी ले आया। बोला, ''बहन मुँह धो लो, पानी पी लो।'' मैं बोली, ''मुझे कुछ नहीं चाहिये।'' वह चुप बैठ गया। फिर, अगले स्टेशन पर पानी ले आया। बोला, ''बहन पानी पीने से कोई हानि नहीं होगी'' और बड़ी नम्रता से गिलास लिये खड़ा रहा। मैंने पानी पी लिया। फिर उसने पूछा, ''कहाँ जा रही हो?'' मैंने बताया यहीं पास में एक बहुत बड़े संत आ रहे हैं। उनसे मिलने जा रही हूँ। वह बोला अच्छा, ''तो क्या माँगोगी?'' मैंने कहा, ''मौत।'' वह बोला, ''मौत वो नहीं देंगे। और कुछ नहीं माँग सकती?'' मैं चुप हो गई, वह भी बैठ गया। मैं एक वर्ष पहले विधवा हो गई थी। मैंने उसे अपनी व्यथा सुनाई। इतने में स्टेशन आ गया और भीड़ घुस गई। ''पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी की, जय। परम पूज्य गुरुदेव की, जय'' का शोरगुल करते, फूल माला लिये हुए लोग आगे बढ़े। वह वृद्ध व्यक्ति उठते-उठते कह गया, ''कल तू मुझसे मिलना।'' दूसरे दिन मैं वहाँ पहुँची, तो देखा कि जिन सन्त से मैं मिलने आयी थी, वे और कोई नहीं, वह वृद्ध व्यक्ति ही थे।

वहाँ बड़ी भीड़ थी। प्रणाम करने वालों की लम्बी लाइन लगी थी। उन्होंने जैसे ही मुझे देखा तो एक कार्यकर्ता से कहा, ''उस बेटी को मेरे पास ले आओ।'' ट्रेन में मैंने उन्हें बताया था कि मेरा कोई पुत्र भी नहीं है। मेरा भविष्य अंधकारमय है। मौत नहीं माँगूँ तो क्या माँगूँ? गुरुजी से जब मैं मिली तो उन्होंने कहा, ''बेटी मैं तेरा पिता हूँ, तू मेरी बेटी है। इसको अच्छी तरह समझ ले।'' और एक कार्यकर्ता को बुलाकर कहा, ''तुम अपना काम किसी और को सँभलवा दो, और कहीं से कोई नवशिशु लेकर ही तुम मेरे पास आना। मैं तीन दिन यहाँ हूँ। बस यही काम तुम्हें करना है।'' गुरुजी की आज्ञा मान वह मैटरनिटी होम गया। वहाँ पता चला एक महिला की प्रथम डिलीवरी हुई थी। डिलीवरी में माँ मर गयी है। पिता ने बच्चे को लेने से मना कर दिया है। उन कार्यकर्ता ने उस बच्चे को गोद लेने की बात कही।

दूसरे दिन लेडी डॉक्टर स्वयं कार्यक्रम स्थल पर आयी। यह देखने कि नवजात शिशु को कौन लेने वाला है, और कैसे पालेगा? वह यज्ञ स्थल पर पहुँची तो अपार भीड़ देखकर और गुरुजी से मिलकर वह बहुत प्रभावित हुई। फिर गुरुजी से बोली कि लगता है, ''बच्चे को सच्चे माँ-बाप यहीं मिलेंगे।''

मुझे बच्चे को लेने में थोड़ा संकोच हो रहा था। मालूम नहीं किस जाति का होगा। माता-पिता कैसे होंगे? घरवाले क्या कहेंगे? आदि नाना विचार मेरे मन में आ रहे थे। गुरुजी समझ गये। गुरुजी ने बच्चे को गोद में ले लिया, और बोले, ''बस, यह अब ब्राह्मण हो गया। बेटी! तुझे याद है न, मैं तेरा पिता हूँ। तुझसे कोई कुछ नहीं कहेगा। लोग तेरी सराहना करेंगे, सहयोग देंगे। तू बस बच्चे को पाल और सारी व्यवस्था होती चली जायेगी। यह पिता हर क्षण तेरे साथ रहेगा। यह तेरा शानदार बेटा होगा। तेरी इतनी सेवा करेगा, कि और कोई बेटा क्या माँ की सेवा करेगा।'' मैंने उसका नाम पीयूष रख दिया। आज वह इंजीनियर है, मातृ भक्त है, और जाने क्या जादू हुआ कि उस दिन से सब कोई मेरा कुछ ज्यादा ही ख्याल रखने लगे। मेरा हृदय भी रोने की अपेक्षा बच्चे की देखभाल में लग गया। वह महिला बोलती भी जा रही थी और रोती भी जा रही थी।

फिर बोली, ''आपके पिता श्रीराम शर्मा मेरे भी पिता हैं, वे कभी नहीं मर सकते। भाई साहब, आपको सब बताकर मैं हलकी हो गयी। मेरा शान्तिकुञ्ज आना सफल हो गया।''

गुरुजी-माताजी एक प्राण-दो शरीर थे।

वे जीवनभर खादी पहनते रहे और वह भी गिने चुने कपड़े। लेकिन साफ और क्रीजदार। गुरुजी, माताजी के जन्मदिन और विवाह दिन पर स्वयं जाकर साड़ी खरीद कर लाते थे। एक बार कोई दूसरा व्यक्ति माताजी के लिए साड़ी लाया तो गुरुजी दु:खी हो गये। बोले, ''माताजी की साड़ी तू लाया, तो तूने मुझे दु:खी कर दिया। तू अपनी साड़ी वापिस ले जा। माताजी की हर साड़ी पर मेरी जिम्मेवारी साड़ी की नहीं बल्कि स्नेह की भी है।'' ❁

जब गुरुजी अज्ञातवास में थे, तो माताजी सख्त बीमार पड़ीं। मैं उन्हें देखने आया था। माताजी ने कहा बेटा, ''मुझे कोई दिल का दौरा नहीं है। मैंने साधना में गुरुजी को देखा। वे ठण्ड में सिकुड़ रहे थे। उनका कुर्ता फटा था। उनका कष्ट देखकर मैं चीख उठी। बस मुझे यही तकलीफ है।'' मैंने कहा, ''फिर भी माताजी, आप अपना इलाज तो करवा ही लीजिए।'' माताजी बोलीं, ''तू डाक्टर है। तेरी बात भी मान लेती हूँ।'' इधर गुरुजी को भी माताजी की अस्वस्थता का आभास हो गया था और वे कुछ दिन के लिये शान्तिकुञ्ज लौट आये थे। ❁

ऐसी ही एक घटना माताजी ने घीया मंडी में मुझे बताई थी। ''गुरुजी बाहर गये हुए थे। अखण्ड दीपक की आग पूजा स्थल पर लग गई। मैं घबरा गई, कहीं गुरुजी को कुछ हो तो नहीं गया। मैं बहुत घबराई, मैंने अपने भगवान से कहा कि जब तक मुझे गुरुजी की सूचना नहीं मिलेगी, मैं कुछ ग्रहण नहीं करूँगी। मैं बराबर चिंता में डूबी रही। शाम को किसी ने दरवाजा खटखटाया, मैंने खोला। गुरुजी सामने थे। बोले, ''शैलो, तुझे क्या हो गया?'' मैंने कहा, ''मैं ठीक हूँ। आप कैसे हो?'' तब गुरुजी ने कहा, ''शैलो, तू क्यों चिंता करती है। कोई खास बात नहीं, खिड़की से मेरी ऊँगली कट गई। लेकिन चोट के बाद तुम्हारी घबराहट ने मुझे परेशान कर दिया, और मैं वापिस आ गया। तुम खाना खाओ और पानी पियो।''

सजल श्रद्धा-प्रखर प्रज्ञा

एक दिन हम लोग उनके पास बैठे थे, तो वे बोले, ''मैं शरीर छोड़ने पर कुछ ऐसा करूँगा जैसे कोई कुर्ता उतारता है, पर फिर मैं तीन स्थानों पर रहूँगा एक माताजी के पास, दूसरा सजल-श्रद्धा, प्रखर-प्रज्ञा तीसरा अखंड

दीपक।'' हमारे साथ अमेरिका के एक परिजन भी बैठे थे। उन्होंने कहा, ''गुरुजी, ये तीनों स्थान तो शान्तिकुञ्ज में हैं और हम लोग तो बहुत दूर हैं।'' इस पर गुरुजी बोले, ''बेटा! मेरा चौथा स्थान उगता हुआ सूर्य होगा।'' ❁

जब गुरुजी ने शरीर छोड़ने का मन बना लिया था, तो उसकी तैयारी वे बहुत पहले से ही करने लगे थे। उन्होंने संकेत देना प्रारंभ कर दिया था। जहाँ आज सजल-श्रद्धा, प्रखर-प्रज्ञा है, वहाँ पहले गुलाब की क्यारियाँ थीं। गुरुजी ने एक दिन सोनी जी, महेंद्र जी, कपिल जी, उपाध्याय जी आदि सभी को बुलाया। माताजी भी बैठी थीं और गुरुजी कहने लगे, ''माताजी, हमने अपने लिये स्थान पसंद कर लिया है। वह जो गुलाब की क्यारियाँ हैं, वह हमें बहुत पसंद आईं। हमने सोचा है, वही स्थान हमारे लिये ठीक है।''

माताजी ने कहा, ''आप क्या कह रहे हैं ?'' तो गुरुजी बोले, ''शरीर तो हम छोड़ेंगे ही। अमर तो हैं नहीं।'' फिर अन्य लोगों के उदाहरण देने लगे कि फलाने बाबाजी की समाधी वहाँ बन गई, फलाने की वहाँ। और हम लोगों से कहने लगे कि देखो! हमें बाहर मत ले जाना। हमारा मन है कि हम और माताजी यहीं रहेंगे। हमारी समाधी यहीं बनाना।'' हम सभी उदास हो गये, माताजी भी रोने लगीं। तब गुरुजी बोले, ''भावुक क्यों होती हो, क्या यह सच नहीं है ?'' माताजी बोलीं, ''पर बच्चों के सामने क्यों... ?'' गुरुजी बोले, ''आज नहीं तो कल, हमको जाना तो है ही।'' फिर उस दिन गोष्ठी आगे नहीं बढ़ी।

कुछ दिन बाद गुरुजी ने गोष्ठी में कहा कि हमने अपने दोनों के लिये जगह चुन ली है। हम दोनों के लिये दो घोंसले बनाओ। फिर एक दिन बोले, ''ऋषिकेश जाओ, वहाँ जो गुरुद्वारे में दो छतरियाँ बनी हैं, उन्हें देखकर आओ और हमारे लिये वैसी ही बना दो। एक का नाम होगा, सजल-श्रद्धा और दूसरी का प्रखर-प्रज्ञा।''

इसी दौरान जयपुर से वीरेन्द्र अग्रवाल जी आये, उनके सामने भी चर्चा हुई, तो उन्होंने कहा, ''गुरुजी, संगमरमर की छतरी बना दें?'' गुरुजी बोले, ''ठीक है, संगमरमर की बना दो।'' इस प्रकार गुरुजी ने अपने रहते ही सजल-श्रद्धा और प्रखर-प्रज्ञा का निर्माण करवा दिया था।

संगमरमर का चबूतरा बना, सामने का फर्श कच्चा रखा गया और गुरुजी ने घोषणा कर दी कि हमारा संस्कार यहीं होगा, हम कहीं बाहर नहीं जायेंगे। हम प्रखर-प्रज्ञा में रहेंगे और माताजी सजल-श्रद्धा में रहेंगी। हमारी चेतना यहाँ आगामी सौ वर्षों तक रहेगी और पूरे विश्व का यह शक्ति केंद्र होगा। यहाँ से हम सबको सजल-श्रद्धा और प्रखर-प्रज्ञा का अंश देते रहेंगे। यहाँ हर कोई हमसे मिल सकेगा, अपनी बात कह सकेगा। हम सबकी उसी प्रकार सेवा करते रहेंगे, जैसे जीवित अवस्था में कर रहे हैं। आज सजल-श्रद्धा, प्रखर-प्रज्ञा संपूर्ण गायत्री परिवार की श्रद्धा का केन्द्र है और परिजन यहाँ पर गुरुजी-माताजी की चेतना को अनुभव भी करते हैं और उनके दर्शन भी। ❁

जीवन के अंतिम क्षणों में गुरुजी, माताजी को निर्देश दे गये थे कि उनके शरीर छोड़ने पर भी उनके किसी भी कार्य में कोई व्यवधान नहीं आना चाहिये। उस समय माताजी के उस स्वरूप को देखकर हमें आज भी आश्चर्य होता है, और साथ ही विश्वास भी कि वे साक्षात् पार्वती ही थीं, जिन्हें अपने शिव की अनश्वरता का पूर्ण अहसास था, अन्यथा साधारण माटी की महिला तो ऐसा नहीं कर सकती कि मालूम है, गुरुजी शरीर छोड़ चुके हैं, फिर भी प्रवचन दिया, सबसे मिलीं। जितनी भीड़ आई थी, सबको भोजन करने का निर्देश दिया। सबके भोजन कर चुकने के बाद ही गुरुजी के शरीर छोड़ने के विषय में बताया।

शाम को गुरुजी के पार्थिव शरीर को अग्नि के सुपुर्द कर दिया गया। उस समय हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं था, जब माताजी ने नादयोग की घंटी बजाने का निर्देश दिया। हम उनकी ओर देखते रह गये। वे बोलीं, ''गुरुजी का निर्देश है, सब कार्य यथावत् चलेंगे, कोई कार्य रुकेगा नहीं। मैं यहीं हूँ, कहीं नहीं जा रहा, बस स्थूल देह त्यागी है।'' शाम को माताजी ने सबके लिये खिचड़ी बनाने का निर्देश दिया और कहा, ''कोई भूखा नहीं सोयेगा।'' अगले दिन सुबह के भी सभी क्रम यथावत् चले, माता जी सबसे मिलीं भी। ❁

गुरुजी के अंतिम समय के शब्दों को सुनने के लिए हम लोग लालायित थे। बड़ी तड़प थी। सो माताजी से जब अनुनय-विनय किया तो उन्होंने कहा, ''वे बहुत पहले से ही कहने लगे थे कि मैं गायत्री जयंती के दिन यह शरीर छोड़ दूँगा। उस दिन साढ़े चार बजे मैं गुरुजी को प्रणाम करके

6:30 बजे स्टेज पर पहुँच गई। मैंने भाषण भी दिया। चार शादियाँ थीं, बच्चों को आशीर्वाद भी दिया, तिलक किया, माला पहनाई, बच्चों को खाना भी खिलाया। प्रणाम में केवल पाँच व्यक्तियों को मैंने फूल दिये और आगे मैं फूल न दे सकी। कारण, मेरा शरीर प्रणाम करा रहा था, पर मुझे मालूम था कि गुरुजी ने अपने शरीर से विदाई ले ली है। चलते समय गुरुजी ने हाथ पकड़कर अंतिम बार मुझे बस इतना ही कहा था कि मैं गायत्री परिवार के बच्चों की जिम्मेदारी तुम पर और केवल तुम पर छोड़े जा रहा हूँ। मैंने भी वायदा निभाने की सौंगध खाई।''

गुरुजी का लिखा यह गीत, जिसे माताजी ने हम सबके लिए गाया है-

तुम न घबराओ, न आँसू ही बहाओ अब,
और कोई हो न हो, पर मैं तुम्हारा हूँ।
मैं तुम्हारे घाव धो, मरहम लगाऊँगा,
मैं खुशी के गीत गा-गाकर सुनाऊँगा।

यह उनके न केवल भाव थे, बल्कि उनका जीवन था, जो हमने देखा।

श्री दिलीप कुमार दत्ता

(श्री दिलीप कुमार दत्ता, डॉ. अमल कुमार दत्ता के छोटे भाई हैं। डॉ. दत्ता का पूरा परिवार पूज्य गुरुदेव से सन् 1960 से सम्पर्क में रहा है और आज भी मिशन के कार्यों में सक्रिय है।)

बालक को जीवन दान

श्री दिलीप कुमार दत्ता, डॉ. दत्ता के भाई हैं, उनके पास भी गुरुजी-माताजी के ढेरों संस्मरण हैं। वे बताते हैं, ''सन् 1967 में, मैं व मेरे भाई डॉ. ए. के. दत्ता का परिवार दोनों एक साथ देवास में रहते थे। वहीं दोनों की सर्विस थी। गायत्री यज्ञों की शृंखला में गुरुदेव देवास आए और हमारे यहाँ ही ठहरे। कार्यक्रम की समाप्ति पर जाते समय गुरुजी ने कहा, ''दिलीप तुझे मालूम है, मैं तुझे क्या देकर जा रहा हूँ?'' मैं हैरानी से उन्हें देखता रहा। मुझे कुछ समझ नहीं आया। उन्होंने पुनः कहा, ''तेरे दो बच्चों में से एक का जीवन आज ही समाप्त था। मैं उसे जीवन देकर जा रहा हूँ।''

मैं अवाक् रह गया। जिसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। गुरुवर ने उसे देख लिया और विधान बदलकर मुझे कृत-कृत्य कर दिया। ऐसी अनेक घटनाएँ मेरे जीवन में बीती हैं जब पूज्यवर ने संरक्षण प्रदान किया है। आज मेरा वह बच्चा अमेरिका में इंजीनियर है।''

मेरी नौकरी, उनका आशीर्वाद

ऐसे ही एक बार मैंने गुरुजी से कहा, ''गुरुदेव मेरी इज्जत का सवाल है। मेरे दो भाई डॉक्टर हो गये हैं।'' गुरुजी ने पूछा, ''तूने क्या पढ़ाई की है ?'' मैंने कहा, ''एम.काम. किया है।'' जवाब मिला, ''तब तू डॉक्टर कैसे बनेगा ?'' मैंने कहा, ''गुरुजी, डॉ. नहीं बन सकता इसलिये तो आपके पास आया हूँ।'' गुरुजी बोले, ''अच्छा! तुझे डॉक्टर के समकक्ष बना दिया जाय तो चलेगा ?'' मैं खुश होकर हामी भरकर घर चला गया तथा डॉक्टर के समकक्ष 'फेमिली प्लानिंग' ऑफिसर के पद के लिये अप्लाई किया। कुछ दिनों बाद मुझे पत्र मिला, लिखा था 'रिग्रेट' यानि नॉट सिलेक्टेड। मैं फिर गुरुजी के पास गया। कहा, ''गुरुजी, मुझे तो रिजेक्ट कर दिया गया।'' गुरुजी ने वह पत्र हाथ में लिया और बोले, ''अरे तेरा हो जायेगा सब कुछ।'' मैंने कहा, ''गुरुजी आपको अंग्रेजी नहीं आती है। इसमें लिखा है रिग्रेट'' गुरुजी ने पुनः कहा, ''चिंता मत कर। सब हो जायेगा तेरा।'' 15 दिन बाद दूसरा पत्र आया। लिखा था यू आर सिलेक्टेड एण्ड पोस्टेड एट रायगढ़। मैं ट्रेन से कहीं जा रहा था। स्टेशन पर पर्चा पढ़ा, रूपराम नगर कॉलोनी में गुरुजी का कार्यक्रम है। मैं तुरंत उतर कर गुरुजी से मिलने चल दिया। गुरुजी के पास पहुँचा व बताया गुरुजी, ''मेरा सलेक्शन हो गया।'' उन्होंने झट से कहा, ''क्यों रे, तूने तो कहा था कि मुझे अंग्रेजी नहीं आती। जा, ट्रेन खड़ी मिलेगी।'' मैं तुरंत वापिस लौट गया और आश्चर्य! सचमुच ट्रेन खड़ी ही मिली। मै बैठा और ट्रेन चल दी, जैसे वह मेरा ही इंतजार कर रही थी। ऐसे कृपालु थे पूज्यवर।

उनकी सर्वज्ञता

यह उन दिनों की बात है जब शान्तिकुञ्ज में लगातार वानप्रस्थ शिविरों का आयोजन चल रहा था। मैं अपने दोस्त के साथ शान्तिकुञ्ज आया। प्रवचन के बाद हम दोनों हरकी पैड़ी घूमने चले गये। लौटकर जब वंदनीया माताजी के पास गये, तब तक गुरुदेव वानप्रस्थ संस्कार सम्पन्न करा कर ब्रह्मदण्ड वितरित करके ऊपर अपने कमरे में जा चुके थे।

माताजी ने हम दोनों को ऊपर, गुरुजी से मिलने भेज दिया। गुरुजी ने दो ब्रह्मदण्ड मँगाए व एक मुझे दे दिया। फिर मेरे दोस्त को देखकर बोले, ''तुझे ब्रह्मदण्ड दूँ कि नहीं। तू जब घर से आया तो तूने अपनी पत्नी को थाली फेंक कर मारी, जिससे उसकी नाक पर चोट लग गई। अब तू ब्रह्मदण्ड से मारेगा। चाय में शक्कर कम थी न। ब्रह्मदण्ड से मारेगा तो मुझे भी पाप लगेगा।''

घटना बिलकुल सत्य थी। मेरा दोस्त सुनकर हैरान रह गया कि गुरुजी को कैसे मालूम हुआ? गुरुजी के चरणों में श्रद्धावनत होकर उसने माफी माँगी और आगे से ऐसा न करने की कसम खाई। तब गुरुदेव ने उसे भी ब्रह्मदण्ड प्रदान किया।

एक और संस्मरण है। मुझे हरिद्वार आना था और उस दिन मुझे तेज बुखार था। मेरा रिजर्वेशन भी नहीं था। फिर भी गुरुजी से मिलने की उत्कंठा इतनी अधिक थी कि मैं घर न जाकर ट्रेन में ही बैठा रहा। रिजर्वेशन कराने जाने की भी मुझमें हिम्मत नहीं थी। अचानक, एक कुली आया और बोला, ''आपको रिजर्वेशन चाहिए?'' मैंने कहा, ''हाँ'' और बिना कुछ पूछे उसे टिकट और पच्चास रुपये दिये। वह टिकट और पैसा लेकर चला गया। उसके जाने के बाद मन में विचार आया, यदि वह न लौटा तो क्या होगा? जो टिकट था वह भी गया।

फिर सोचा, अब जो होगा देखा जायेगा। थोड़ी ही देर में वह कुली आ गया और जिस सीट पर मैं बैठा था, वह उसी सीट का रिजर्वेशन करा कर लाया था। मैंने भगवान को धन्यवाद दिया और चैन से सो गया।

हरिद्वार पहुंचा। माताजी से मिला तो उन्होंने कहा, ''बेटा, गुरुजी के दो फोन आ गये। तुझे ऊपर बुलाया है।'' मैं कुछ समझा नहीं। मन में सोचा, मैं तो अभी आ रहा हूँ। दो फोन पहले से कैसे आ गए?

ऊपर पहुँचा। देखते ही गुरुजी ने कहा, ''रिजर्वेशन मिल गया? और बुखार भी उतर गया न?'' मैंने गुरुजी से पूछा, ''गुरुजी आप कहाँ पर थे?'' पर फिर तुरंत ही मन में सोचा, मैं क्या पूछ रहा हूँ? वे तो सर्वज्ञ हैं, हो न हो, उस सहृदय व्यक्ति के रूप में गुरुदेव ही तो पहुँचे थे और तुरंत श्रद्धावनत हो उनके चरण पकड़ लिये। बहुत से संस्मरण हैं, पूरा जीवन क्या अनेकों जन्म उनका ऋण चुकाने में लगा दें तो भी संभव नहीं है, बस इतना ही कहूँगा कि न जाने किन जन्मों के पुण्य होंगे जो गुरुदेव हम लोगों का इतना ध्यान रखते हैं।

3. गुरुसत्ता के साथ मनोविनोद के क्षण

गुरुजी काम करने के साथ-साथ मनोरंजन भी करते रहते थे। कितना भी काम का दबाव हो वे वातावरण को कभी बोझिल नहीं होने देते थे। सबके साथ हँसते-हँसाते रहते थे। उनके हास्य में भी कोई न कोई रहस्य या शिक्षण अवश्य छिपा रहता था। ऐसा लगता था जैसे उनकी कोई भी बात व्यर्थ नहीं है। हँसते-हँसाते भी वे कुछ न कुछ सिखा देते थे। पढ़ें उनकी विनोद प्रियता से संबंधित कुछ प्रसंग -

मूछों वाला मुन्ना

श्री वीरेश्वर उपाध्यायजी एवं श्रीमती कृष्णा उपाध्याय

श्री गिरजा सहाय व्यास चार आत्मदानियों में से एक हैं। उनके छोटे पुत्र मथुरा आये, तब बहुत छोटे थे। सभी उसे ''मुन्ना'' कहते थे। उस बालक को गुरुवर की गोद में खेलने का बहुत सौभाग्य मिला था। समय के साथ वे बिलासपुर चले गये। बड़े होकर इंजीनियर बन गये।

एक बार वे शान्तिकुञ्ज आये। पूज्यवर से मिलने के क्रम में उन्होंने बताया कि मैं गिरजा सहाय व्यास का लड़का हूँ। गुरुजी उस समय लेखन कर रहे थे। जब उन्होंने सुना कि गिरजा सहाय का पुत्र है तो कलम रोक कर ऊपर से नीचे तक देखा। फिर पूछा-''तुम्हारा क्या नाम है ?'' उसने कहा-''मुन्ना।''

गुरुजी को झट से चुहल सूझी और जोर से बोले-''वीरेश्वर! इधर आना।'' और वे पैर के ऊपर पैर रख बच्चों से मनोरंजन के मूड में आ गये व कहा-''जल्दी आ, देख तुझे मूछों वाला मुन्ना दिखाता हूँ।'' पहली आवाज में ही मैं, लेखन छोड़कर गुरुवर के सामने तक पहुँच चुका था। उसी वाक्य को दुहराते हुए उन्होंने फिर कहा, ''देख! तुझे मूछों वाला मुन्ना दिखाता हूँ। देख! यह वही है न, जो हमारे साथ इतना सा (दोनों हाथ से छोटेपन का इशारा करते हुए) खेला करता था।''

माजरा समझकर, मैं भी हँसने लगा। गुरुजी ने बालक से हाल-चाल पूछा। बहुत स्नेह दुलार दिया एवं विदा किया।

विश्वामित्र-2 में चले जाओ

एक दिन गुरुजी के पास एक सज्जन आये और बोले, ''गुरुजी, मुझे मुक्ति चाहिये।'' गुरुजी उससे दो बार बोले, ''मुक्ति चाहिये, तुझे मुक्ति चाहिये। अच्छा! ठीक है बेटा। जा, विश्वामित्र-2 में चला जा। तुझे मुक्ति मिल जायेगी।'' हम लोगों को सुनकर हँसी आ गई। क्योंकि मुक्ति जीजी उन दिनों विश्वामित्र -2 में ही रहती थीं।

वह सज्जन नीचे उतरे और विश्वामित्र-2 में पहुँचे। मुक्ति जीजी सामने ही बैठी थीं। उन्होंने पूछा, बताइये भाई साहब, किससे मिलना है। वे सज्जन बोले, ''गुरुजी ने मुझे यहाँ भेजा है।'' मुक्ति जीजी ने पूछा क्या काम है? वे बोले, ''मुझे मुक्ति चाहिये।'' मुक्ति जीजी बोलीं, ''मेरा ही नाम मुक्ति है। कहिये।'' सुनकर वे झेंप गये और बोले, ''मेरा मतलब... मेरा मतलब...उस मुक्ति से था।'' सुनकर मुक्ति जीजी को भी हँसी आ गई और गुरुजी ने आपसे मजाक किया है, कहकर उन्होंने उन्हें विदा किया।

जब मुक्ति जीजी, गुरुजी के पास गईं तो गुरुजी उनसे बोले, ''आज एक व्यक्ति मुझसे मुक्ति माँगने आया था। मैंने उसे तेरे पास भेज दिया। उसे मुक्ति मिली कि नहीं।'' फिर तो हम सब खूब हँसे।

अच्छा तो हम मूँछ मुँड़ा लेते हैं

(डॉ. मंजू चोपदार, 1971 में दीक्षा ली, 1990 में पूर्ण रूप से शान्तिकुञ्ज आ गईं)

अपने बुजुर्गों के मुँह से मैंने सुन रखा था कि व्यक्ति जिस किसी भी प्रतिभा का धनी हो, उसे उसकी आवश्यक सामग्री सदैव अपने साथ रखनी चाहिए। यह बात मुझे बहुत अच्छी लगी थी। चूँकि मैं स्त्रीरोग विशेषज्ञा थी, अत: प्रसूति के समय हेतु आवश्यक औजार अपने साथ बैग में ही रखने लगी।

इसी बीच मैं हरिद्वार आई। बैग हमेशा मेरे साथ ही रहता था। मैं ऊपर खाना खा रही थी, तभी माताजी-गुरुजी के पास खबर पहुँची कि ब्रह्मवर्चस के श्री भास्कर तिवारी जी की पत्नी को प्रसव का दर्द उठा है। अत: शीघ्र अस्पताल जाने की व्यवस्था करनी है। मैं डाक्टर हूँ। यह बहुत लोगों को मालूम था। किसी ने मुझे बुलाया और माताजी के पास भेजा। उन्होंने पूछा, मैंने कहा, ''माताजी मेरे पास सब सामान है, कुछ आवश्यकता नहीं पड़ेगी।''

अब तो माताजी बहुत खुश हुईं व बहुत आशीर्वाद देकर ब्रह्मवर्चस भेजा। शीघ्रता के कारण मेरे लिये कार निकलवाई गई, जिसे आदरणीय डॉ. प्रणव भाई साहब ने स्वयं चलाया। हम ब्रह्मवर्चस पहुँचे। सुखपूर्वक प्रसव करवाया। लड़का हुआ, जिसका नाम बाद में ''शरद'' रखा गया। शान्तिकुञ्ज वापस लौटकर वन्दनीया माताजी को रिपोर्ट दी। माताजी ने खूब पीठ थपथपाई। उस समय गुरुजी व माताजी दोनों धूप में, छत पर बैठे थे। माताजी ने जैसे ही सुना ''लड़का हुआ है।'' खुशी से बोल पड़ीं ''मैं जीत गई''।

पता नहीं, गुरुजी एवं माताजी की परस्पर क्या चर्चा हुई थी ? पर उसमें माताजी का कथन सत्य हुआ था। अत: गुरुजी ने कहा, ''अच्छा ! हम हार गये ? तो चलो, मूँछ मुँड़ा लेते हैं।'' उल्लेखनीय है कि गुरुदेव क्लीन शेव रहा करते थे। अत: वातावरण ठहाकों से गूँज उठा। पुत्र जन्म की खुशी अनन्त गुनी हो गई।

उसके मुँह से धुँआ निकले

श्रीमती श्रीपर्णा दत्ता, शान्तिकुञ्ज

एक बार मैंने गुरुजी से कहा, ''गुरुजी जो झूठ बोलते हैं, बेईमानी, चोरी करते हैं। यदि ऐसी कोई व्यवस्था होती कि पाप करते ही उसका पता लग जाता, तो सारे पाप नष्ट हो जाते।'' गुरुजी बोले, ''तू बड़ी होशियार है। अब जब मैं भगवान के पास जाऊँगा, तो तेरी बात कहूँगा कि जब कोई झूठ बोले तो उसके मुँह से धुँआ निकले, और चोरी करे तो उसके हाथ कट जायें।'' और जोर से हँस दिये। वहाँ उपस्थित अन्य लोग भी हँसने लगे।

आज उसे डाक खाने दो

(श्री राम खिलावन अग्रवाल एवं श्रीमती विमला अग्रवाल, 1959 में गुरुदेव के संपर्क में आये। 1963 में दीक्षा ली और 1985 में पूर्ण रूप से शान्तिकुञ्ज आ गये। वर्तमान में ब्रह्मवर्चस में कार्यरत हैं।)

सन् 1977, दिसम्बर की बात है। गुरुजी डाक स्वयं ही देखते थे। उन दिनों पोस्टमास्टर का काम श्री अभिनेष जी देखते थे। गुरुजी को डाक के विषय में कुछ जानकारी चाहिये थी। उन्होंने पास बैठे कार्यकर्त्ता से कहा, ''जा, अभिनेष को बुला ला।''

कार्यकर्त्ता पोस्ट ऑफिस में गया तो पता चला कि वह हरिद्वार के पोस्ट ऑफिस में गया है। उसने गुरुजी के पास आकर कहा, ''गुरुजी, अभिनेष तो डाक खाने गया है।''

गुरुजी अपने काम में तल्लीन थे सो पूरे शब्द ठीक से नहीं सुने और पूछा, ''क्या कहा?'' कार्यकर्त्ता ने पुनः अपनी बात दुहराई, ''गुरुजी, अभिनेष तो डाक खाने गया है।'' उसका बोलने का ढंग कुछ अलग सा था। सो गुरुजी को मजाक सूझी। बोले, ''अच्छा, डाक खाने गया है।'' फिर कुछ देर बाद पुनः बोले, ''अच्छा, अच्छा! डाक खाने गया है, तो अच्छा है, आज उसे डाक खाने दो, हमारा खाना बचेगा।'' और पूरा वातावरण ठहाकों से गूंज पड़ा। ऐसे विनोदी थे पूज्यवर।

इतने बड़े गुरुजी यज्ञ करा रहे हैं!

(श्री शिवप्रसाद मिश्रा जी, 1957 में अखण्ड ज्योति के पाठक बने, 1965 में दीक्षा ली और 1972 में पूर्ण रूप से शान्तिकुञ्ज आ गये।)

यह गायत्री तपोभूमी मथुरा का प्रसंग है। पूज्य गुरुदेव के पास मिलने वालों का ताँता लगा ही रहता था। उस समय 24 कुण्डीय यज्ञ चल रहा था। श्री रमेश चन्द्र शुक्ला जी यज्ञ सम्पन्न करा रहे थे। पूज्यवर उठने ही वाले थे कि एक आगन्तुक आया व गुरुजी से ही पूछने लगा ''पं. श्रीराम शर्मा कहाँ हैं? मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।''

गुरुदेव को मजाक सूझा। उन्होंने कहा-''अरे! अरे! देख नहीं रहे हो! इतने बड़े गुरुजी यज्ञ करा रहे हैं।'' और उसे श्री रमेश चंद्र शुक्ला जी की ओर भेज दिया। चूंकि वह अनजान था। श्री शुक्ला जी लम्बी दाढ़ी रखते थे। सो उसने भी गुरुजी की बात पर अविश्वास नहीं किया। उनकी बात को सत्य समझकर वह श्री शुक्ला जी के पास गया और साष्टांग प्रणाम किया।

उसके प्रणाम करते ही श्री शुक्ला जी हड़बड़ा गये और बोले-''हैं..! हैं..! यह क्या कर रहे हो भाई! आप प्रणाम गुरुदेव का करिये। वे वहाँ बैठे हैं।'' तब उन सज्जन ने कहा, ''मैं तो उन्हीं से पूछकर आया हूँ। उन्होंने ही आपके पास भेजा है।''

अब तो उनसे कुछ कहते नहीं बना। समझ गये, गुरुदेव ने मजाक किया है। अतः उनसे पुनः बोले, ''भाई, मेरी बात का विश्वास करें। वे ही पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य हैं। उन्होंने आपसे विनोद किया है। आप जाइये, उनके ही चरण पकड़िये।''

जब वह लौटकर आया तो पूज्य गुरुदेव ने मंद-मंद मुस्कराते हुए पूछा, ''पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य नहीं मिले क्या?''

''क्यों हमारा मजाक बनाते हैं प्रभु..? कहते हुए वह सज्जन उनके चरणों में गिर पड़े।''

चरण मत छोड़ना

ऐसे ही एक दिन श्री रमेश चन्द्र शुक्ला जी और अन्य दो चार कार्यकर्ता पूज्य गुरुदेव के साथ कुर्सियों पर बैठे थे। इतने में एक सज्जन वहाँ आये। वह गुरुजी को पहचानते नहीं थे। श्री रमेश चन्द्र शुक्ला जी की लम्बी दाढ़ी और मूँछ देखकर उन्होंने सोचा, ''यही गुरुजी होंगे,'' और उनके चरण पकड़कर दण्डवत प्रणाम की मुद्रा में लेट गये। श्री रमेश चन्द्र शुक्ला जी हकबकाकर खड़े हो गये और बोले, अरे! अरे! क्या करते हो भाई, मैं गुरुजी नहीं हूँ।

इधर गुरुजी उसे बोले, ''पकड़े रहो, पकड़े रहो। चरण मत छोड़ना, जब तक गुरुजी आशीर्वाद न दे दें।''

उनकी बात सुनकर उन सज्जन ने और भी कसकर शुक्ला जी के चरण पकड़ लिये। श्री रमेश चन्द्र शुक्ला जी बोले, ''अरे भाई, सच मानो, मैं गुरुजी नहीं हूँ।'' और गुरुजी की ओर इशारा करते हुए बोले, ''गुरुजी इधर हैं।'' पर गुरुजी ने फिर से कह दिया, ''चरण मत छोड़ना। गुरुजी सहजता से आशीर्वाद नहीं देते।'' और हँस दिये।

वह सज्जन कुछ देर शुक्ला जी के पैर पकड़कर लेटे रहे। इधर सभी लोगों को हँसी आ गई। सबको हँसते देख उन सज्जन को लगा कि कहीं कुछ गड़बड़ है और वह उठकर खड़े हो गये। फिर न जाने क्या सोचा और उन्होंने गुरुजी के चरण पकड़ लिये।

गुरुजी को बैठने दो

उन दिनों पूज्यवर सारे देश में गायत्री एवं यज्ञ के प्रचार-प्रसार हेतु जाते थे। वे सदैव ही तीसरे दर्जे में सफर करते।

एक बार श्री रमेश चन्द्र शुक्ला जी व पूज्य गुरुदेव ट्रेन में चढ़े। उस दिन भारी भीड़ थी सो बैठने की जगह नहीं मिली। दोनों सामान को एक किनारे जमाकर थोड़ी देर खड़े रहे। कुछ देर बाद गुरुदेव ने रमेश चन्द्र शुक्ला जी की ओर इशारा करते हुए ट्रेन में एक व्यक्ति से कहा-''थोड़ी जगह हमारे गुरुजी को

बैठने के लिये दे दीजिए।'' श्री शुक्ला जी कुछ बोलते इसके पूर्व ही गुरुदेव ने उन्हें अपनी बड़ी-बड़ी आँखे दिखाते हुए चुप रहने का निर्देश दे दिया। बेचारे क्या करते, चुप रहे।

श्री शुक्ला जी लंबी दाढ़ी एवं लंबे बाल रखते थे। जिससे वे संत जैसे दिखाई पड़ते थे। अत: उन्होंने उन्हें सचमुच ही गुरुजी मान कर थोड़ी जगह बना दी। गुरुदेव ने उन्हें पुन: आँख दिखाकर बैठने का निर्देश दे दिया। मरता क्या न करता वे चुप-चाप बैठ गये। वे बैठ तो गये पर उन्हें बिल्कुल अच्छा नहीं लग रहा था कि वे बैठें और गुरुदेव खड़े रहें।

थोड़ी देर तक वे सोचते रहे फिर बोले, ''भाई इन्हें भी थोड़ी जगह दे दो।'' उन्हीं महाशय ने पुन: थोड़ी जगह बनाई और कहा-''आप भी बैठ जाइये।'' अब गुरुजी भी बैठ गये।

ट्रेन से उतरने पर जब श्री शुक्ला जी ने फिर से ऐसा न करने की बात कही तो उन्होंने कहा, ''तुझे बैठाया तो बाद में मुझे भी बैठने को मिल गया न। अन्यथा दोनों ही खड़े रहते।'' और ठहाका मार कर हँसने लगे। अब शुक्ला जी भी हँसने लगे और दोनों हँसते हुए आगे बढ़ गये।

मज़ाक में भी भविष्य की ओर इशारा

श्री केसरी कपिल जी, शान्तिकुञ्ज

मथुरा की बात है। श्री शरण जी सपरिवार मथुरा पहुँचे। रास्ते में उनका सामान चोरी हो गया। उनकी पत्नी इस कारण बहुत दु:खी हो रही थीं। वे गुरुजी से बोलीं, ''गुरु जी, हमने कौन सा पाप किया जो हमारा सारा सामान चोरी हो गया?'' इस पर गुरुजी ने पहले उन्हें थोड़ा समझाया फिर मजाक करते हुए कहने लगे, ''राम के जमाने में तो रावण सीता जी को भी उठा कर ले गया था। तुम्हारा तो सामान ही गायब हुआ है।''

फिर मेरी ओर इशारा करते हुए कहने लगे, ''परसों ये लखनऊ जाने वाला है इसका कोई बिस्तर ही उठा कर चलता बनेगा, तो यह क्या कहेगा?'' उस समय तो हम सबको हँसी आ गई और वातावरण हल्का हो गया। पर मज़े की बात यह हुई कि वास्तव में उस यात्रा के दौरान लखनऊ स्टेशन पर से कोई मेरा बिस्तर लेकर चलता बना।

कौआ कान न काट ले जाय

श्रीमती मुक्ति शर्मा, शान्तिकुञ्ज

एक दिन जब मैं माताजी को प्रणाम करने गई, तो जैसे ही मैंने माताजी को प्रणाम किया, माताजी हँस दीं। मैंने माताजी से हँसने का कारण पूछा तो बोलीं, ''रात को गुरुजी मजाक कर रहे थे। उन्होंने अखबार में कोई खबर पढ़ी है कि शहर में कोई ऐसा कौआ आया है जो महिलाओं के कान काट कर जेवर ले जाता है। फिर मुझे पूछने लगे कि हमारे यहाँ कौन कान में बाली पहनती है ? मैंने कहा, और का तो मुझे ख्याल नहीं पर मुक्ति पहनती है। इस पर गुरुजी बोले, ''हाँ, वह तो रोज ब्रह्मवर्चस से आना जाना भी करती है। तुम उसे समझा देना कि ध्यान रखे, देखना कहीं कौआ कान न काट ले जाये'' और हँसने लगे। सो मुझे, तुझे देखकर उनकी बात याद आ गई।'' मुझे भी माताजी की बात सुनकर हँसी आ गई और बोली गुरुजी भी मजाक करते रहते हैं। माताजी भी हँसने लगीं।

रात को मैंने इनसे माताजी की बात बताई तो इन्होंने कहा, ''तुमको तो हर बात मजाक लगती है। गुरुजी के मजाक में भी रहस्य छिपा रहता है। तुम अपनी ये बाली-वाली उतार कर रख दो।'' मैंने बालियाँ उतार कर रख दीं।

सुबह जब माताजी को प्रणाम करने गई तो माताजी बोलीं, लाली, ''बाली कहाँ गई।'' मैंने कहा माताजी आपने ही तो कल कहा था कि कौआ कान काट ले जाता है। मैंने इनसे सब बात बताई तो ये बोले कि गुरुजी की हर बात में कोई न कोई रहस्य रहता है सो तुम तो इन्हें उतार कर रख ही दो। इसलिये मैंने उतार दीं। माताजी बोलीं, ''कहने दे उसे, कहीं कौआ भी कान काट ले जाता है। ले भी जाता होगा तो मैंने तुझे संरक्षण दिया। तू तो अपनी बाली पहन, नंगे कान अच्छे नहीं लग रहे। आज ही पहन लेना।'' मैंने कहा, ''ठीक है, माताजी।''

कमरे में आकर मैंने अपनी बालियाँ पहन लीं। इन्होंने देखा तो कहा कि तुमने फिर लटका लीं। मैंने कहा माताजी ने संरक्षण दे दिया है। लेकिन वास्तव में गुरुजी की बात व्यर्थ नहीं थी। कुछ दिन बाद मेरी ससुराल से पत्र आया जिसमें लिखा था कि एक रात घर में चोर घुस आया था। अम्मा ने उसे देख लिया और तो वो कुछ नहीं कर पाया लेकिन अम्मा के कान का एक बूंदा खींच ले गया जिससे अम्मा का कान कट गया।

पत्र पढ़कर इन्होंने कहा कि ''देखा! तुम्हें तो माताजी ने संरक्षण दे दिया, पर घटना तो घटी ही, यहाँ नहीं तो, घर में। गुरुजी मजाक-मजाक में भी कुछ न कुछ संकेत करते रहते हैं।''

कौए वाली खबर भी सच थी। उसने शहर में आतंक मचा रखा था। प्राय: रोज ही कोई न कोई घटना घटती थी सो पुलिस उसके पीछे लगी थी। एक दिन फिर अखबार में छपा कि कान काटने वाला कौआ पकड़ा गया और उसके कोटर में से बहुत से कान के जेवर मिले।

मिठाई की दुकान तो खूब चलेगी

श्री मिठाईलाल जी चौधरी, ओरीजोत, बस्ती (उ. प्र.)

एक बार 1981 में जब मैं शान्तिकुञ्ज आया और पूज्यवर को प्रणाम करने गया तो मुझे देखते ही गुरुजी मज़ाक करते हुए बोले-''अहा! मिठाईलाल जी भी आ गये। अब तो इनके आगे पीछे सब बच्चे घूमते रहेंगे। इनकी मिठाई की दुकान तो खूब चलेगी।'' वहाँ उपस्थित सब लोग हँसने लगे। मुझे भी हँसी आ गई।

लेकिन गुरुजी के यह शब्द तो वरदान थे यह मैं नहीं जानता था। हमारे एक मित्र की मिठाई की दुकान थी। जो उन दिनों चलती नहीं थी पर उसके बाद जब भी मैं उनकी दुकान पर जाकर बैठ जाता तो थोड़ी सी ही देर में उनकी खूब बिक्री हो जाती। आज उनकी वह दुकान खूब तरक्की कर रही है।

गायत्री माँ चाय पिलाती थी

डॉ. अमल कुमार दत्ता, शान्तिकुञ्ज

सतीश भाई साहब की शादी थी। गुरुजी का एक भतीजा जिसका प्यार का नाम सत्तो है, अपने जीजा जी की खूब तारीफ कर रहा था। जब कुछ ज्यादा ही तारीफ होने लगी तो गुरुजी उसका मजा लेते हुए बोले, ''सत्तो! तुमने अपने जीजा जी की तारीफ तो बहुत की, बस एक ही बात की कमी रह गई कि तुमने यह नहीं कहा कि हमारे जीजा जी को गायत्री माँ चाय पिलाती थी।'' गुरुजी की बात सुनकर सब लोग जोर से हँस दिये।

भूत तुझे उठा ले जायेगा

एक बार गुरुजी हमारे यहाँ आये हुए थे। मुझसे बोले, ''डॉक्टर, तुझे कार चलाना नहीं आता।'' मैंने कहा, ''गुरुजी, मैं सीख रहा हूँ। मेरा मन था कि जब तक आप रहें कार मैं ही चलाऊँ पर अभी ठीक से सीख नहीं पाया।'' गुरुजी बोले, ''तू चला।'' मैंने ड्रायवर को पीछे भेज दिया। गुरुजी बतलाते रहे कार कैसे बचा-बचाकर चलायें और हम अमई पहुँच गये।

रमन जी की पत्नी निर्मला जीजी भी हमारे साथ थीं। हम और गुरुजी आगे बैठे थे। इतने में पीछे से ड्रायवर बोला, ''गुरुजी, इस दायीं तरफ की बिल्डिंग में भूत रहता है।'' गुरुजी बोले, ''निम्मो, यह ड्रायवर कह रहा है, यहाँ भूत रहता है। सँभलकर बैठ, नहीं तो भूत तुझे उठा ले जायेगा।'' वह बोलीं, ''गुरुजी, आप बैठे हैं तो डर क्या? '' गुरुजी बोले, ''गुरुजी तो सामने बैठे हैं, पीछे से तुझे उठा ले गया तो मैं क्या करूँगा?'' और हम सब हँसने लगे।

गुरुजी का बच्चा गुरुजी

मेरा छोटा बेटा सिद्धार्थ 3-4 वर्ष का था। उन दिनों हम लोग अशोक नगर में रहते थे। गुरुजी अशोकनगर आये हुये थे। लोगों ने उन्हें बहुत सी फूल मालायें पहनाई थीं। गुरुजी फूलमाला रखकर अपने स्थान से उठे तो सिद्धार्थ ने वह सब अपने गले में पहन लीं। इतने में पंडित लीलापत शर्मा जी वहाँ से निकले। वह बच्चे से हिले-मिले हुए थे। सिद्धार्थ ने उन्हें बुलाया और कहा,''मुझे प्रणाम करो, मैं गुरुजी हूँ।'' लीलापत शर्मा जी भी उसे ''गुरुजी प्रणाम! गुरुजी प्रणाम!'' कहते हुए गोद में उठा कर गुरुजी के पास ले गये और बोले, यह कहता है, ''मैं गुरुजी हूँ।'' गुरुजी ने उसे गोद में उठाया और बोले, ''ठीक तो कहता है यह अमलकुमार का बेटा। शेर का बच्चा शेर। बकरी का बच्चा बकरी। गुरुजी का बच्चा गुरुजी।'' और ठहाका लगाकर हँस दिये। हम सब भी जो वहाँ खड़े थे, हँसने लगे।

पर उनकी इस बात के पीछे गहरी प्रेरणा भी छिपी थी, जिसे हम सबने हृदयंगम भी किया। वे अपने प्रवचनों में भी अक्सर कहते थे, ''बेटा! शेर का बच्चा शेर होता है। तुम शेर के बच्चे बनना। बकरी के नहीं।''

कुहनी मारो!

श्रीमती विमला अग्रवाल, ब्रह्मवर्चस

अक्षय तृतीया का दिन था। सरोज अग्रवाल का विवाह दिन था व मेरे सवा लक्ष अनुष्ठान की पूर्णाहुति थी। तारीख से हमारा भी विवाह दिन था सो हम दोनों दम्पत्ति एक साथ वंदनीया माताजी के कमरे में दाखिल हुए। माताजी ने चुटकी लेते हुए कहा, ''अरे! आज तो सब इकट्ठे चले आ रहे हो, क्या बात है?'' मैंने कहा, ''माताजी, सरोज का विवाह दिन है।''

सरोज ने कहा, ''माताजी, आज भाभी का भी सवालक्ष का अनुष्ठान पूरा हुआ है।''

सुनकर माताजी ने कहा, ''लगता है दिन गिन कर अनुष्ठान शुरु किया था। यह तेरी भाभी है कि तू इसकी भाभी है।''

मैंने कहा, ''यह मेरी ननद है।'' तब माताजी ने पुनः चुटकी ली, ''ननद भाभी हो तो कुहनी मारो।'' और खिलखिला कर हँस पड़ी। उनकी बात सुनकर हम सबको भी हँसी आ गई।

रोटियाँ तो तुम्हारे जैसे ही फूल रही हैं

प्रणाम के समापन व लेखन के पश्चात् गुरुजी चौके में आकर थोड़ी देर टहलते थे। साथ-साथ सबके कार्यों का निरीक्षण करते, आवश्यक निर्देश देते व हँसी मजाक करते हुए हँसाते भी रहते। कभी-कभी कोई लड़की किसी से गुस्सा हो जाती तो उस समय तो गुरुजी-माताजी उसे समझा देते। किंतु बाद में गुरुजी सबका मनोरंजन करते हुए कहते-''छोरियो! रोटीयाँ तो तुम्हारे जैसे ही फूल रही हैं''।

सबको हँसी आ जाती। जो गुस्सा होती वह भी समझ जाती और गुस्सा भूलकर सबके साथ हँसने लगती।